सहजानंद सत्संग सत्प्रकाशन

(१)

आत्म-सम्बोधन

लेखक—

शान्तमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक वर्णी
मनोहर जी "सहजानंद" महाराज

प्रकाशक—
अध्यक्ष-सहजानंद सत्संग सेवा समिति

वि० स० २००८] वीरनिर्वाण सम्वत् २४७८ [ई० १९५१

प्रति ११००] [मूल्य १॥)

२५ या २५ से अधिक प्रति मगाने पर दो आना
प्रति रु० कमीशन

मुद्रक—जगप्रकाश रस्तौगी विजय प्रिन्टिंग प्रेस मेरठ शहर।

सहजानंद सत्संग सत्प्रकाशन

के

सम्मानित प्रवर्तकों की शुभ नामावलि

卐श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन
बैंकर्स एण्ड ज्वेलर्स सदर मेरठ। १०००)

卐श्रीमान् ला० मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन
तम्बाखूवाले, मुजफ्फरनगर। १०००)

卐श्रीमान् ला० प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन
जैन निवार वर्क्स, मेरठ। १०००)

लेखक के गुरु—

प्रातःस्मरणीय आध्यात्मिक संत प्रशान्तमूर्ति
न्यायाचार्य पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
गणेशप्रसाद जी वर्णी महाराज

आत्म-सम्बोधन

इस ग्रन्थ के उदघाटन कर्ता के कुछ शब्द

इसमें हमारे "प्रातः स्मरणीय श्री मद्गणेशशिष्य" अध्यात्मयोगी शान्तमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज ने समय समय पर उठे हुए अपने हृदय के उद्गार निबद्ध करके हम लोगों का महान् उपकार किया है।

यद्यपि इन मनोरथों के लिखने का प्रमुख उद्देश्य आपका निज के-सम्बोधन का रहा किन्तु उनसे जो हम लोगों के मिथ्यात्व अन्धकार नष्ट होने व वीतराग परिणति के मार्ग में लगने का जो महान् उपकार है वह चिरस्मरणीय है।

मुझे इस बात का भी महान् हर्ष है—कि मैं असोज माह में एक दिन आपके दर्शनार्थ आपके सत्संग कुञ्ज में गया वहां आप कुछ लिख रहे थे मैंने कुछ उपदेश की प्रार्थना की तब आप जो लिख रहे थे उसे समझाया आप के लिखे हुए जीवस्थानचर्चा, अध्यात्मप्रश्नोत्तरी, तत्त्वरहस्य, दृष्टि, धर्मबोध, पद्यावलि, आत्मसम्बोधन,

सहजानन्दगीता, समस्थानसूत्र व संदृष्टिसंग्रह ये १० ग्रन्थ थे मैंने आपसे उन ग्रन्थों के प्रकाशित कराने की प्रार्थना की। बहुत निवेदन के बाद आपने जो आत्म-सम्बोधन सामने रखे हुए थे उसे प्रकाशित करने की प्रार्थना को अस्वीकार न कर सके। जिसके फल स्वरूप आज आप हम सब उनमें भरे हुए अमृतकणों का पान कर रहे हैं।

अन्त में आशा करते हैं कि हम सब इन सुधाबिन्दुओं का पान कर अपनी आत्मदृष्टि बनाकर सत्य अविनाशी सहज आनन्द के पात्र बनें।

धर्मानुरागियों का सेवक—

मंगसिर सुदी छट मंगलवार
ता० ४ दिसम्बर १९५१

महावीर प्रसाद जैन बैंकर
सुपुत्र ला० छेदामलजी जैन,
सदर मेरठ।

लेखक—
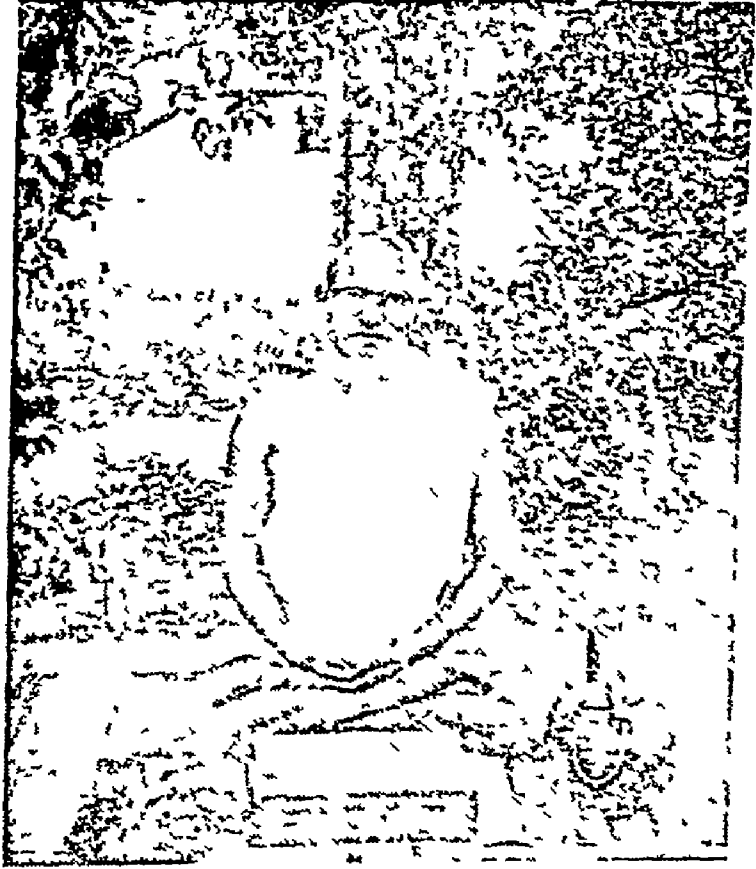
अध्यात्मयोगी शान्तमूर्ति सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

प्रस्तावना

आज का मानव महान् दुखी है। किसी का युवा पुत्र मर गया वह चिल्ला चिल्ला कर रो रहा है। किसी की स्त्री असाध्य रोग से पीड़ित है, वह बेचैन और परेशान है। एक सन्तान के न होने से दुखी है तो दूसरा पुत्र के कुपुत्र होने के कारण अत्यन्त चिन्तातुर रहता है। किसी को भर पेट भोजन नहीं मिलता— तो किन्हीं २ को यह चिन्ता लगी हुई है कि उनका अस्वस्थ शरीर भोजन पचाने मे असमर्थ है। रात-दिन आजीविका के लिये कठिन से कठिन परिश्रम करते हुए भी पर्याप्त धन की प्राप्ति नहीं होती और अगर किसी को पुण्योदय से हो भी जाये तो उसके संरक्षण मे तो वह सदैव ही चिन्तातुर रहता है। सारांश सर्वत्र अशांति और दुख का ही साम्राज्य है। परन्तु इन दुःखों से मुक्ति प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ विपरीत करते हैं अर्थात् इन्द्रिय विषयों मे सुख की कल्पना कर इसी की प्राप्ति मे प्रयत्नशील हैं। वास्तविक सुख क्या है और किस प्रकार के पुरुषार्थ द्वारा वह प्राप्त हो सकता ? इस प्रश्न का उत्तर 'आत्मसम्बोधन' ग्रन्थ से प्राप्त होगा जिसके लेखक परमपूज्य प्रातः स्मरणीय श्री १०५ क्षुल्लक वर्णी मनोहर लाल जी न्यायतीर्थ 'सहजानंद' हैं।

लेखक महोदय उच्चकोटि के विद्वान, अपूर्व लेखक, प्रभावशाली वक्ता, शान्ति की साक्षात मूर्ति ही नहीं, अपितु संसार, शरीर और भोगों से वैरागी और आदर्श त्यागी भी हैं। यह छोटी सी आयु और यह विशाल ज्ञान बड़ा आश्चर्य होता है। उनकी मनोहर वाणी में तो एक प्रकार का जादू भरा है। एक वार जिसको श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त हो गया वह मन्त्र-मुग्ध सा हो जाता है। उनका दिग्दर्शन कराने के लिये उनके पूज्य गुरुवर्य्य पूज्य श्री १०५ चुल्लक गणेश प्रसाद जी वर्णी न्ययाचाय द्वारा उनकी ३७ वीं वर्ष गाँठ (कार्तिक वदी १० सं० २००८) पर प्राप्त हुआ पत्र ही पर्याप्त है। पूज्य गुरुवर्य्य जी लिखते हैं "श्रीयुत मनोहर जी मनोहर ही हैं। यह वहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति है। इसकी धारणा शक्ति बहुत ही उत्तम है। यह एक वार ही मे धारणा कर लेता है। जब यह अष्टसहस्त्री, प्रमेय कमल-मार्तण्ड, जीवकाण्ड, कर्म-काण्ड को पढ़ता था एक घन्टे में याद कर लेता था। हम से पूछो तो यह निकट भव्य है। इसका नाम तो परमेष्ठी मंत्र में लिया जावेगा"।

इस ग्रन्थ मे पूज्य लेखक महोदय के अपने मन मे उठे विचारों का संकलन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है। कल्पनायें छोटी २ अवश्य हैं परन्तु भाव बहुत ऊंचे २ भरे है। ऐसा प्रतीत होता है 'गागर मे सागर' ही है। एक स्थल पर लेखक महोदय लिखते है "पर पदार्थ दुख का कारण नहीं, किन्तु पर

पदार्थ में जो आत्मीय बुद्धि है वह दुख का कारण है" जब हमने रोग का निदान ही गलत समझा हुआ है तो उसका उपाय किस प्रकार ठीक हो सकता है। यह वाक्य हमको स्पष्टतया बतला रहा है दुख का मूल कारण क्या है? बड़े २ धार्मिक ग्रन्थ भी तो इसी उद्देश्य को लेकर रचे गये हैं।

पुत्र-मरण हुआ। हम सिर पटकते २ पागल हो जाते हैं। स्त्री वियोग हुआ मानो हमारा जीवन ही शून्य हो गया। धन नष्ट हुआ मानो सर्वस्व नष्ट हो गया। यह है हमारी धारणा जिसके कारण हम दुखी हो रहे हैं। कितने सुन्दर और सरल शब्दों में हमारे योग्य लेखक महोदय इस दुख से छुटकारा पाने का उपाय बतलाते हैं। वह लिखते हैं "वियुक्त वस्तु के संयोग होने का नियम नहीं, पर संयुक्त वस्तु का वियोग नियम से होता है"। हम अपने जीवन मे इन विचारों को उतार तो लें फिर हम कैसे सुखी नहीं होंगे सोच नहीं सकते।

"दान देकर भी प्रतिष्ठा का लोभ बढ़ाया जा सकता है" कितना कल्याणकारी है यह वाक्य। हम दान देते हैं ठीक है। परन्तु यदि दान देकर भी हमारी यही भावना रही कि हमारा यश हो, हमारी कीर्ति हो, चार आदमियों में हमारा नाम हो तो उस दान से कोई लाभ नहीं है। दान देने का तात्पर्य तो

लोभ कषाय का अन्त करना है परन्तु यश की इच्छा रखने से तो लोभ कषाय को और भी उत्तेजन मिला, फिर ऐसे दान मे तो कोई लाभ नहीं। आत्मा पर लक्ष्य रखने वाली कल्पनायें तो बहुसंख्यक है जिनसे आत्मा को तत्वपथ पर पहुंचने का साधन मिलता, यथा— "तुम तो अनादि अनंत हो किसी एक पर्याय रूप नहीं हो, जब इस पर्याय रूप ही तुम नहीं हो तब इस पर्याय के व्यवहार मे क्या रुचि करना!"? "किसी भी परिस्थिति मे होओ आत्मा के एकाकीपन को जानकर प्रसन्न रहो"।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे पूज्य लेखक महोदय ने कितनी सरल भाषा मे धर्म के ऊचे २ सिद्धान्तों का दिग्दर्शन कराया है अपनी इन छोटी २ कल्पनाओं मे। पूर्वाचार्यों के महान् २ ग्रन्थ तो संस्कृत भाषा में होने के कारण सर्व साधारण उनसे अपना आत्माकल्याण करने से वंचित रहता है, किन्तु हमारे लेखक महोदय ने अपने मन मे उठे विचारों का सकलन इस ग्रन्थ मे इतनी सरल भाषा मे किया है जिसको पढ़कर प्रत्येक जन— बाल हो, युवा हो, वृद्ध हो, किंवा स्त्री हो—अपनी आत्मा का कल्याण कर सकता है और मोक्ष का उपाय पा सकता है जो कि जीव मात्र का ध्येय होना चाहिये।

प्रथम सस्करण में ५०० कल्पनाएं छपी थी और वह जैसे समय २ पर विचार हृदय मे आये उसी क्रम से संकलित कर दिये गये थे। परन्तु अब समाज के विशेष आग्रह से उनका

संकलन विषय रूप में कर दिया गया है और कल्पनायें भी ६४० हो गई हैं, जिसमे प्रत्येक ही अपने में अपूर्व है। धीरे धीरे एक कल्पना को पढ़ो, फिर कुछ समय तक उस पर विचार और मनन करो, अवश्य ही शान्ति प्राप्त होगी।

अन्त में मेरा तो यही कहना है कि यह छोटी २ कल्पनायें नहीं हैं, परन्तु अष्ट कर्म रूपी ईंधन को जलाने के लिये विशाल अग्नि की एक चिनगारी मात्र है। नित्यप्रति इनका पाठ करो, मनन करो, अपने जीवन मे उतारो, व्यवहार में लाओ और शीघ्र ही देखोगे कि कैसे सुख और शान्ति आपको प्राप्त नहीं होती और कैसे आपका कल्याण नहीं होता। अगर पाठकगण इन कल्पनाओं को उसी ढग से पढ़े जिस ढंग से हमारे लेखक महोदय के हृदय मे आई थी (अर्थात् कहीं २ आश्चर्य से, कहीं कहीं झिझक, से कहीं एक एक कर, कहीं २ टूटी धारा सी दो ऐसे) तो विशेष रहस्य इन कल्पनाओं मे प्रतीत होगा, और विशेष रुचि होगी आत्मकल्याण करने की। हमारे लेखक महोदय ने इस ग्रन्थ की रचना करके हमारा बहुत कल्याण किया है। मेरी तो यही भावना है कि पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक वर्णी मनोहरलाल जी चिरायु हों और स्वस्थ रहें और हमारा सदैव मार्ग-प्रदर्शन करते रहें।

कार्तिक पूर्णिमा
वीरनिर्वाण स० २४७८

ब्र० जीवानन्द जैन
अध्यक्ष-सहजानंद सत्संग सेवा समिति

पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक वर्णी मनोहर जी 'सहजानन्द' महाराज की

जीवन-झांकी

श्रीयुत मनोहर जी मनोहर ही हैं। यह बहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति है। इसकी धारणा शक्ति बहुत ही उत्तम है। यह एक बार ही मे धारणा कर लेता है? हम से पूछो तो यह निकट भव्य है इसका नाम तो परमेष्ठी मन्त्र मे लिया जावेगा।

'गणेश वर्णी'

परमपूज्य गुरुवर्य्य श्री प्रातः स्मरणीय, अध्यात्मिकसंत, विश्व हितैषी, प्रशान्तमूर्ति, न्यायाचार्य, पूज्यपाद श्री १०५ क्षुल्लक गणेश प्रशाद जी वर्णी महाराजके उक्त शब्द ही पर्याप्त हैं आप के जीवन का दिग्दर्शन कराने के लिये, फिर भी भक्तिवश मैं कुछ लिखने का असफल प्रयत्न कर रहा हूँ।

शिशु मदनमोहनः—

कार्तिक कृष्णा १० विक्रम सं० १९७२—आज जिला झाँसी (रियासत ओरछा) के दमदमा ग्राम के इस छोटे से घर मे यह हर्षध्वनि कैसी? यह प्रसन्नता क्यों? मालूम हुआ कि आज

श्रीमती तुलसाबाई ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया है। उसीका यह आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है। पिता श्री गुलाब राय जी के हर्ष का कोई पारावार ही नहीं। चाचा वगैरह प्रसन्नता से फूले नहीं समाते। सभी ने मिलकर इस सौम्य मूर्ति को नाम दिया 'मदन मोहन'।

बालक मगनलालः—

किसी को मन्द मुसकान से, किसी को अपनी सुन्दर चाल ढाल से, और किसी को तुतलाती भाषा से रंजित करता हुआ बालक बढ़ने लगा। परन्तु दैव— दैव से यह सब न देखा गया। ३ वर्ष का बालक–बीमार पड़ा–ऐसा बीमार·· बचने की कोई आशा नहीं। परिवारजनों ने बालक के जीवित रहने की आशा से बालक का अशुभ नाम रखा 'मगनलाल' अर्थात मांगा हुआ। पुण्य ने साथ दिया। मगनलाल के पेट की नसों पर गर्म लोहा रखा गया। वह बच गया। क्या पता था किसी को उस समय कि बालक मगन का यह नाम सार्थक ही सिद्ध होगा अर्थात् भविष्य में वह सदा ही अपने आत्मावलोकन मे 'मगन' रहा करेगा। समवयस्क बालकों में खेलता परन्तु किसी बच्चे का दिल न दुख जाय यह भावना सदा रहती। सदैव पराजित बालक का पक्ष लेता जब कि दूसरे बालक उस बच्चे की हंसी उड़ाते।

विद्यार्थी मगनलालः—

अब कुछ आगे चलिये। मगनलाल ६ वर्ष के हुये। घर पर

ही पढ़ना आरम्भ किया। ११। वर्ष तक घर पर ही विद्याध्ययन किया। पाठशाला में बच्चों का पिटना देखकर घबराते थे। एक दिन पाठशाला न जाने के अपराध में आपकी माता जी ने आपको पीटा। क्या विचारा आपने उस समय 'यदि मैं खम्भा (जो कि सामने खड़ा था) होता तो आज मुझे पिटना व दुःखी होना तो न पड़ता।' यह हो सकती है असाहजिक ज्ञान के अभाव की प्रतीक्षा।

विद्यार्थी मनोहरलालः—

एक बार श्रीमती चिरोंजाबाई जी ने एक गणित का प्रश्न आपको हल करने को दिया जिसका उत्तर ठीक न देने पर उन्होंने कहा 'अगर नहीं पढ़ोगे तो तुम्हारा नाम मनोहर रख दूंगी।' आपने पूछा 'मनोहर का अर्थ?' उत्तर मिला 'गधा' तब आप बोले 'नहीं, ऐसा न करना। आप मुझे मनोहर न कहना। मैं पढ़ूंगा पाठशाला जाऊंगा।' तभी से आप 'मनोहर' हुये। और आपकी सौम्य मूर्ति भी तो मनोहर ही है। सागर विद्यालय पहुंचे। बुद्धि तीक्ष्ण थी। एक बार आपके गुरू पूज्य श्री वर्णी जी ने आप से 'तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पद द्वये लीनं, श्लोक याद करने को कहा तो आप तुरन्त ही बोल उठे कि ऐसा ही हिन्दी मे भी तो है कि 'तुव पद मेरे हिय में मम हिय तेरे पुनीत चरणों मे।' यह है आपकी कुशाग्र बुद्धि का उदाहरण। आश्चर्य है कि खेल कूद के बहुत शौकीन होते

हुये भी परीक्षाओं में प्रथम ही रहा करते थे। एक बार— परीक्षा में प्रथम आने पर प्रधानाध्यापक जी ने प्रसन्न होकर पूछा तुम क्या चाहते हो ?' उत्तर देते हैं 'मुझे खेल कूद से कोई रोके नहीं। संगीत का विशेष शौक था। हारमोनियम खरीदा। बजाना सीख गये। एक दिन गुरू जी ने देख लिया। डर से हारमोनियम बेचना पड़ा। बांसुरी लेली, उसका अभ्यास किया। सगीत की ओर तो रुचि अब भी इतनी है कि एक दिन सामायिक करते समय बैंड की मधुर ध्वनि ने आपका ध्यान आकर्षित कर ही लिया। विचारने लगे मानों 'मैं किसी तीर्थंकर के सभा-स्थल (समवशरण) में बैठा हूँ। देवगण वादित्र बजाते हुए आ रहे हैं।' उस दृश्य से इतने प्रभावित हुए कि आंखों से हर्षाश्रु की धारा बहने लगी।

आरम्भ से ही परिणामों में विरक्ता थी। विषय भोगों की ओर बिल्कुल भी रुचि नहीं थी। विद्यालय मे विवाह मे पूर्व जब लड़के आपसे पूछते आपकी सगाई हो गई तो आप कोने मे जा बैठते। सगाई की बात गाली सी मालूम होती। आप १४ वर्ष के थे। विद्यालय की छुट्टियों में आपका विवाह होन निश्चित हुआ। परन्तु आपकी विवाह की इच्छा न थी। माता जी को पत्र लिखा जिसमे संसार की असारता दिखाई। विवाह न करने का अनुरोध किया। छुट्टी हुई, आपके चाचा आये। मां को बीमारी का बहाना करके आपको घर ले गये और

आपकी इच्छा के विरुद्ध आपको विवाह बन्धन में जकड़ ही दिया गया। छोटे भाई विमलकुमार व बहिन लक्ष्मीबाई का तो इस अवसर पर हर्षित होना स्वाभाविक ही था। परन्तु आप थे कि गृहस्थी से बिल्कुल उदास। जल में कमल की भांति।

शास्त्री मनोहरलालः—

धारणा शक्ति तो बहुत तीक्ष्ण थी ही जिस बात को सुनते बहुत शीघ्र ही धारण कर लेते। १५, १६, १७ वर्ष की अवस्था मे ही शास्त्री (जैन परीक्षायें) पास की।

न्यायतीर्थ मनोहरलालः—

बुद्धि के बड़े तीक्ष्ण थे। १७ वर्ष की अवस्था में न्यायतीर्थ (सरकारी परीक्षा) मे उत्तीर्ण हुए। इस छोटी से वय में विशाल ज्ञान प्राप्त करने का कारण आपके ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम तो है ही परन्तु आपकी गुरु भक्ति भी बहुत अंशों में निमित्त कारण बनी। आपके गुरु पूज्य श्री महावर्णी जी के प्रति आपका ऐसा भक्तिपूर्ण व प्रेममय व्यवहार है कि अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता ?

पंडित मनोहरलाल :—

इसके बाद आपने संस्कृत विद्यालय में संस्कृत अध्यापक का कार्य किया ? चाहे थोड़े समय के लिये पढ़ाते थे परन्तु पूरे तन मन से। परीक्षा फल ९० फी सदी के लगभग रहता। पढ़ाने मे

अब भी बहुत रुचि है। कोई समय हो हर समय बाल, वृद्ध, युवा कोई हो धर्म शिक्षा देने में ही संलग्न रहते हैं। मुख्य कर्तव्य समझते हैं आप इसको।

मंत्री मनोहरलाल:—

सामाजिक क्षेत्र में पैर रखा। १६ वर्ष के थे। 'जाति सुधारक सभा' के मंत्री नियुक्त किये गये। गांव के छोटे २ झगड़े आपके पास आते। बड़ी कुशलता से उनका फैसला करा देते। जनता मे इतना प्रभाव व विश्वास था कि 'कहा करते थे 'जो मनोहर कर देगा, स्वीकार है'। एक बार सतगुवां ग्राम मे एक वृद्ध—विवाह होने जारहा था। आप साईकिल पर इस गांव मे पहूँचे। उस होने वाले अनाचार को रोका। जनता बहुत ही प्रभावित हुई। अब भी जहां जाते हैं समाज में मनमुटाव के दूर करने का ही प्रयत्न करते रहते हैं।

साव (शाह) मनोहर लाल:—

बुन्देलखंड में साव (शाह) उन्हें कहते हैं जो लेन देन का व्यवहार करते हैं। जब आप ६ ही वर्ष के थे कि पिता जी सदैव के लिये आपको छोड़ कर चले गये। माता जी का भी देहान्त हो चुका था। घर में लेन—देन का कार्य शिथिल पड़ गया। जब आप २१ वर्ष के हुए तो गृहस्थी की चिंता से आप को अपना लक्ष्य लेन—देन की ओर देना पड़ा। परन्तु पिता

जी को स्वर्गवास हुए १२ वर्ष हो चुके थे अतः बहुत से ऋणों की मियाद समाप्त हो चुकी थी। आपने ओरछा रियासत के राजा को एक प्रार्थना पत्र लिखा कि मै बालिग होगया हूँ। अतः पुराने ऋणों की मियाद बढ़ा दी जाये ताकि मैं इन्हें वसूल कर सकूं। राजाज्ञा आपके अनुकूल हुई। फिर भी आपके कोमल हृदय ने आपको आज्ञा नहीं दी कि किसी पर नालिश करके रुपया वसूल किया जा सके।

व्रती मनोहर लाल :—

पहली स्त्री का संसर्ग अधिक दिन तक न रह सका। २० वर्ष की आयु मे वह चल बसी। इच्छा न होते हुए भी घर वालों (विशेष कर स्वसुर) के आग्रह से दूसरा विवाह कराना पड़ा। भाग्य में कुछ और ही था। वह भी ६ वर्ष पश्चात् जब आप लगभग २६।। वर्ष के थे आपका मार्ग निस्कंटक बना कर चली गई। अब आपने पूर्ण निश्चय कर लिया कि ब्रह्मचर्य से रहेंगे। इसी समय आपने कुछ पद्य बनाये जिनका संग्रह 'मनोहर पद्यावलि' में किया गया है जिससे उनके उस समय कितने वैराज्यपूर्ण विचार थे इस बात का ज्ञान होता है। घर-वालों व गांव वालों ने तीसरे विवाह के लिये जोर दिया परन्तु यहां तो विचार बहुत ऊंचे चढ़ चुके थे। आपने एक न सुनी। आसाढ़ शुक्ला पूर्णिमा सं० २००० को सिद्ध क्षेत्र श्री शिखर जी पहुंच कर आपने पूज्य गुरु श्री महावर्णी जी के समक्ष ब्रह्मचर्य व श्रावक के व्रत धारण किये।

पूज्य श्री वर्णी जी :—

अब तो आप सब झंझटों से मुक्त हो चुके थे । सुख और शांति की प्राप्ति के हेतु ज्ञानार्जन में जुटगये । वैराग्यता और बढ़ी । २ वर्ष बाद ही काशी में सप्तम प्रतिमा के व्रत आदरे । तभी से आपको श्री वर्णी जी कहने लगे ।

आपके पूज्य गुरु जी श्री पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी (वर्तमान पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेश प्रसाद जी वर्णी) पैदल यात्रा करते २ सागर (सी० पी०) पधारे थे । सहारनपुर के कुछ व्यक्ति दश लक्षण पर्व में पूज्य गुरु जी के दर्शनार्थ सागर गये । वहीं पर आपके दर्शनों का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ और साथ ही साथ आपकी मधुर और मनोहर वाणी सुनने का भी । बहुत प्रभावित हुए । पूज्य गुरु जी से आपको उत्तर प्रान्त में भेजने के लिये प्रार्थना की प्रार्थना स्वीकृत हुई । उत्तरप्रान्त का अहोभाग्य आप जून १६४५ को सहारनपुर पधारे । आपकी मधुरवाणी ने सब का मन मोह लिया । संसार के दुखी प्राणी किस प्रकार दुख से छूट जायें यही सदैव आपकी भावना रहती थी । दुखी प्राणियों को धर्मामृत पिलाने की एक तड़पन थी आपके हृदय में । इसी उद्देश्य से आपके ही उपदेश से प्रभावित होकर सहारनपुर में उत्तर प्रान्तीय दिगम्बर जैन गुरुकुल की स्थापना आपके ही कर-कमलों द्वारा हुई । अब यह गुरुकुल श्री हस्तिनागपुर तीर्थ क्षेत्र पर सुचारु रूप से चल रहा है । —

इसके पश्चात् आपने जबलपुर में आठवीं, फरवरी सन् १६४८ ई० में बरनासागर में नवमी, और दिसम्बर सन् १६४८ ई० मे आगरा म दशम प्रतिमा अपने गुरू पूज्य श्री महावर्णी जी के समक्ष ली।

क्षुल्लक वर्णीजी:—

परिणामों के चढ़ने में क्या देर लगती है। परिणाम और वैराग्यमय हुये। आपको आहार के लिये लेजाने के लिये श्रावकों मे प्रायः प्रतिदिन विसवाद हो जाया करता था। कोई कहता था मैंने पहले कहा, कोई कहता था मैंने। सरल हृदय तो आप थे ही। आप किसी का चित्त दुखाना नहीं चाहते थे। उक्त विवाद के कारण ही बहुत ही छोटी सी वय मे विक्रम संवत् २००५ में सब के मना करने पर भी आपने श्री हस्तिनागपुर तीर्थ क्षेत्र पर पूज्य गुरू महावर्णी जी के समक्ष भैक्ष्यवृति का व्रत ग्रहण किया। अब आप क्षुल्लक वर्णीजी के नाम से प्रसिद्ध हुये।

सफल लेखक:—

आप व्रती व त्यागी ही नही, वरन् उच्च कोटि के विद्वान और लेखक भी है। आपकी लेखन शैली अद्वितीय, मनोहर, सरल और हृदय तक पहुंचने वाली है। १४ वर्ष की अवस्था मे ही आपने 'शौक-शास्त्र' नाम का ग्रन्थ संस्कृत भाषा मे बनाया जिसमें रेल की सवारी, खेल कूद आदि के ढंग का वर्णन

था। २६॥ वर्ष की अवस्था में 'मनोहर पद्यावलि' की रचना की जिसमे पता चलता है कि आप काव्य व छन्द शास्त्र के भी उच्चकोटि के जानकार हैं। एक समस्थान सूत्र रचा जिसमें १११ अध्यायों मे लगभग ४००० सूत्र हैं। धर्म की विशेष जानकारी के लिये 'चौतीस ठाना' ग्रन्थ का निर्माण किया जिसमे आपके विशाल ज्ञान का दिग्दर्शन होता है। 'आत्म-सम्बोधन' जिसमे ६४० कल्पनायें हैं इस बात को सिद्ध करने मे पर्याप्त हैं कि आपके परिणामों मे कितनी, संसार, शरीर; भोगों से वैराग्यता भरी हुई है। एक २ कल्पना ऐसी है जिसको जीवन मे उतार कर सर्व साधारण अपना कल्याण कर सकता है। इस पुस्तक का दूसरा संस्करण अब आपके समक्ष है। जन साधारण को प्रारम्भिक धर्म-ज्ञान के हेतु आपने 'धर्म बोध' नामक पुस्तक की रचना की है जो शीघ्र ही प्रकाशित हो रही है। इन सबके अतिरिक्त आपने फरवरी सन् १६५१ में 'गीता' रची जिस मे ३१५. संस्कृत के श्लोक हैं। यह महान् और उच्चकोटि का ग्रन्थ है। और अनेक ग्रन्थ आप लिख रहे हैं, जो कि हमे आशा है बहुत शीघ्र ही प्रकाश में आयेंगे और सर्व साधारण के कल्याण मे निमित्त होंगे।

सहजानन्द :

'गीता' के हर श्लोक के चौथे चरण मे सहज आनन्द का वर्णन

किया गया है। इसलिये आपका नाम सहजानन्द पड़ा। इसके अतिरिक्त जब आप व्रती सम्मेलनमे भाग लेने के लिये फरवरी सन् १९५१ ई० को फीरोजाबाद पहूँचे वहां आपके गुरु पूज्य श्री वर्णी जी ने आपको परमानन्द के नाम से पुकारा। साथ ही यह बात भी जची की 'परम' की अपेक्षा स्वाभाविक अर्थात् 'सहज' अच्छा प्रतीत होता है। अतः आपको आपके सहवासी "सहजानन्द" पुकारने लगे।

आप अपना कल्याण तो कर ही रहे हैं परन्तु मोहान्धकार मे डूबे हुए संसारी प्राणियों का कल्याण कैसे हो सदैव यही विचारते रहते हैं। जहा भी जाते है यही उपदेश देते है कि अगर सुख और शांति प्राप्त करना है तो जीवन को धर्ममय बनाओ। सर्वसाधारण धर्म के विषय मे बिल्कुल अन्धकार में है। लक्ष्य स्कूल व कालेज की शिक्षा की ओर है और धार्मिक शिक्षा की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखते। परिणाम यह हो रहा है कि स्कूल और कालेज के विद्यार्थी धर्म नाम की वस्तु से बिलकुल अपरिचित रहते हैं और दूषित वातावरण में रहने वाले ये विद्यार्थी विषय भोगों के गुलाम बनकर अपने जीवन को बरबाद कर देते हैं। व्यापारी वर्ग भी अर्थ संचय और विषय भोगों मे इतने संलग्न रहते हैं कि जीवन का उद्देश्य क्या है इसको बिलकुल ही भूल जाते हैं। ऐसे ही विद्यार्थियों व व्यापारियों का जीवन सुख और शांतिमय बनाने के लिये

आपने १० जनवरी सन् १९५१ ई० में मेरठ सदर में धर्म शिक्षा सदन की स्थापना की जहां पर आत्म-विद्यार्थी को सिखाया जाता है कि जिस धर्म के द्वारा उसका जीवन सुख और शांतिमय बन सकता है वह धर्म है क्या ? अब मेरठ सदर में ही नहीं वरन मेरठ शहर, मुजफ्फरनगर, कैराना, कांधला और शामली में भी धर्म शिक्षा सदन सुचारु रूप से जन कल्याण का कार्य कर रहे हैं। आत्म विद्यार्थियों का उत्साह बढ़ाने के लिये आपने १० जौलाई सन १९५१ ई० को मेरठ सदर मे उत्तर प्रान्तीय श्री धर्म शिक्षा परीक्षालय की स्थापना की जिसमें आत्म विद्यार्थियों की परीक्षा का वहुत ही उत्तम प्रबन्ध है। बालकों और व्यापारियों तक ही सीमित न रखकर आपने इस कार्य को आगे बढ़ाया। सितम्बर सन् १९५१ ई० में मेरठ सदर में श्री श्राविका धर्म शिक्षा सदन की स्थापना की जिसका उद्देश्य महिलाओं को धर्म शिक्षा देना है।

यूं तो जिसने भी आपका उपदेश सुना उसका ही कल्याण हुआ परन्तु जो साक्षात आपके चरण चिन्हों पर चल रहे हैं वे हैं श्री ब्र० रामानन्द जी, श्री ब्र० ब्रह्मानन्द जी श्री ब्र० रामानन्द जी व श्री ब्र० जयानन्द जी ब्र० जीवानन्द जी २१ वर्ष पहिले अजैन थे इन्हें पद्मपुराण की कथा श्रवण से ही जैन धर्म की श्रद्धा हो गई थी फिर पूज्य श्री महावर्णी जी का सत्समागम प्राप्त रहा अब पूज्य श्री महावर्णी जी के आदेशानुसार आपके

सत्संग में करीब ३ वर्ष से सदैव रहते हैं सप्तम प्रतिमा का व्रत पालन करते हैं। श्री ब्र० ब्रह्मानन्द जी अनेक शास्त्रों के ज्ञाता हैं और सहिष्णु पुरुष हैं। श्री ब्र० रामानन्द जी व जयानंद जी भी अपने व्रत पालन में तत्पर रहते हैं। ये सब आपके सत्संग में रहकर स्वयं का भी कल्याण कर रहे हैं और, सर्व-साधारण का मार्ग प्रदर्शन कर रहे है।

और क्या क्या:—

त्यागी भी बहुत से होते हैं। विद्वानों की भी कमी नहीं है। परन्तु त्यागी होने के साथ ही साथ उच्चकोटि का विद्वान भी हो ऐसे विरले हीं होते हैं। पूज्य क्षुल्लक श्री वर्णी जी भी उन्हीं मे से है। जिस समय पूज्य गुरुवर्य्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेश प्रसाद जी वर्णी मेरठ से इटावा को प्रस्थान कर रहे थे इस समय आपके विषय में जो शब्द उन्होंने कहे थे भूले से नहीं भूलाये जा सकते। उन्होंने उपस्थित जनता को सम्बोधित करते हुए कहा था "मैं तुमको एक रत्न सौंपे जा रहा हूँ, भले प्रकार रक्षा करना इसकी। ऐसा त्यागी और ऐसा विद्वान तुमको कहीं न मिलेगा।"

आपकी प्रवचन शैली की जितनी प्रशन्सा की जाय थोड़ी है। जिस समय आपके हृदय की आवाज श्रोताओं तक पहुंचती है तो उनके हृद्-तन्त्री के तार झनझना उठते हैं और वह आनन्द विभोर हो उठते है, मन्त्र मुग्ध से हो जाते है। वाणी में जादू है, कंठ में मधुरता है, चेहरे पर शान्ति, हृदय निष्कषाय,

निष्कपट—कैसे न श्रोताओं पर प्रभाव हो समझ मे नही आता। एक बार याद है दशलाक्षणी पर्व मे मुजफ्फरनगर मे आप तत्त्वार्थ सूत्र पर प्रवचन कर रहे थे। २ घंटे तक प्रवचन हुआ। स्वर्गों का व लौकान्ति देवो का वर्णन था। सभी श्रोता चित्र-लिखित से बैठे थे। उस समय तो ऐसा प्रतीत हुआ कि वास्तव में स्वर्ग मे ही बैठे हुए हैं। अध्यात्म-कथनी जिस समय करते हैं आप भी मग्न हो जाते हैं और श्रोताओं को कुछ क्षण के लिये संसारी झंझटों से मुक्त कर देते हैं। सीधा-साधा सरल भाषा मे आपका उपदेश होता है। स्त्री, बच्चे, युवक, वृद्ध सब कोई समझते है, ग्रहण करते हैं अपना कल्याण करते हैं।

शान्ति की तो आप प्रतिमूर्ति ही हैं। क्रोध तो आपको छू भी नहीं गया है। सदैव प्रसन्नतचित्त रहते हैं। क्रोध की एक रेखा भी कभी आपके चेहरे पर दृष्टिगोचर नहीं होती। हंसते हैं और हंसी हंसी में ही पर का व स्वयं का कल्याण करते रहते हैं।

गुण तो इतने हैं आप मे जिनका वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। फिर भी जो कुछ बना लिख दिया।

अन्त में मेरी तो हार्दिक भावना है कि आपका स्वास्थ सदैव ठीक रहे जिस से आप स्वयं का भी कल्याण कर सके

और जन-साधारण भी आपके उपदेश को ग्रहण करके अपना जीवन सफल बना सके।

कार्तिक वदी १०
दिनाङ्क सं० २००८

मूलचन्द जैन
मुजफ्फरनगर।
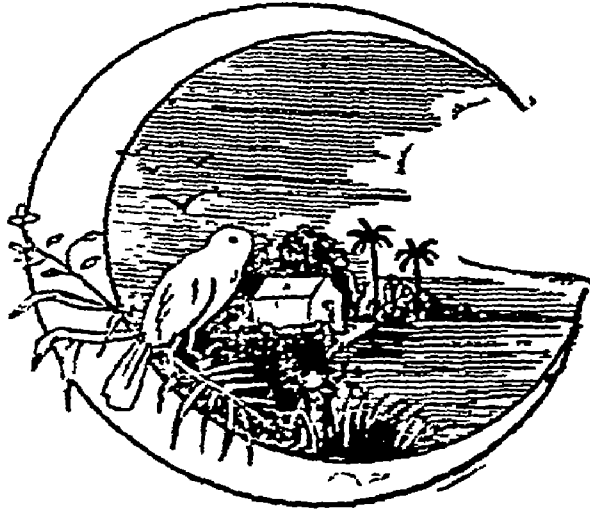
शुद्धि पत्र

विषय-पृष्ठ-कल्पना-पंक्ति				अशुद्धशब्द	शुद्धशब्द
३	११	२	२	आत्रफल	अविफल
३	१३	१०	१	भगवन	भगवन्
३	१३	१०	५	सामग्रय	सामग्र्य
३	१४	१३	१	पूर्वज्ञ	पूर्णज्ञ
३	१६	२१	१	ता सुनो	तो सुनो
४	१८	५	२	रहा	रहो
४	१८	७	३	असयम	असंयम
४	२१	१६	५	सुखैपी	सुखैषी को
५	२९	२२	६	की	का
६	३३	[illegible]	४	था सन्मान	या सन्मान
६	३५	१५	६	योविगबुद्धि	वियोगबुद्धि
६	३८	२८	१	आत	आत्म
६	३९	[illegible]	३	वावक	बाधक
७	४१	४	५	जावा	जावो
८	४८	१२	२	स्वभाव के	स्वभाव के समान
९	५२		१४	गंभीरता से	गभीरता से पढ़ो
९	५४	१०	२	व्यवहारिणाम्	व्यवहारिणाम्
९	५४	११	२	स्पृह	स्पृहा
९	५५	१२	४	भिन्न	मित्र
९	५६	१४	४	अन्न	आना

६	५६	१५	२	वाह्य	वाह्या
१०	६४	१०	१	सुख	सुखी
१०	६५	१८	३	देन	देना
११	६८	४	३	अनत	अनंत
१४	८५	१७	३	मानत	मानते
१५	४२	१२	६	शका	शंका
१७	६६	२	४	स्वय	स्वयं
२४	१२७	६	५	हागा	होगा
२४	१३०/१३१	१६	३	संकोच करो	संकोच न करो
२५	१३५	१४	४	दूसरे से पड़ेगा	दूसरे से पड़ेगा
३२	१६२	३	२	अखड	अखंड
३४	१६८/१६९	४	६	पर में हैं,	पर में है,
३६	१७८	६	५	सहजानदमय	सहजानंदमय
४४	२०६	११	५	परीषहीं	परीषहों
४७	२१८	१	१	व्यती	व्यतीत
४८	२२४	६	१	तपश्चरण	जहां तपश्चरण
४८	२२६	१४	३	जा कुछ	जो कुछ
४८	२२६/२२७	१७	३/४	पर यह शब्द भेद है	×
४६	२३१	६	६	चोभ में हा	चोभ में ही

कहां-क्या

मनोहर वाणी

अथवा

आत्मसम्बोधन

विषया-

नुक्रम कल्पना क्रम   कल्पना (मनोरथ)

१–१. मनोहर ! तुम उत्कृष्ट तत्त्व को विचार करके भी कभी अतत्त्व में मुग्ध होते हो और कभी तत्त्व की ओर जाते हो, इस लिये जब तुम्हारे मनोरथ उठें उन्हें निज के बोध के अर्थ पढ़ने के लिये लिखते जाना चाहिये ।

卐 ॐ 卐

२–२६५. मनोहर ! जो तुम लिखते हो उसका ध्येय अपने में जागृति करे रहना रखो, केवल प्रकट करना प्रतिष्ठा के

लोभ का साधन बन सकता है, अतः वास्तविक ध्येय से च्युत कभी मत होओ ।

卐 ॐ 卐

३–७६८. लिखने के उद्देश्य कितने ही हो जाया करते हैं उन्हें संक्षेप में कहा जाय तो उद्देश्यों के दो विभाग हो जाते हैं—१–सत् उद्देश्य २–असत् उद्देश्य । जो आत्म हित पर पहुंचा देवें वे सत् उद्देश्य हैं, और जो अहित में भ्रमावें वे असत् उद्देश्य हैं ।

卐 ॐ 卐

४–७६९. मेरे लेखन के उपयोग से मेरी परिणति अशुभोपयोग से पृथक् रहे अथवा इसके वाचने के निमित्त से कोई अन्य अपने उपादान से अपने को अवलोकित करके शान्ति प्राप्त करें ये सत् उद्देश्य हैं ।

卐 ॐ 卐

५–७७०. बहुत से लेखक अपनी कृति लिख गये हैं मेरी भी कृति रहे अथवा यश का प्रसारक चिन्ह रहे अथवा लोक समझें कि ऐसा इनका ज्ञान है अथवा लोक मुझे मानते हैं तो कुछ भी तो उनके लिये''होना चाहिये ये सब असत् उद्देश्य हैं ।

卐 ॐ 卐

६-७७१. लेख का सत् उद्देश्य ही रखो, मायामय जगत से सुलझे हुए रहो।

卐 ॐ 卐

२ भेदविज्ञान

१–२. विभाव भाव का विश्वास नहीं क्योंकि वह क्षणिक है, स्वभावविरुद्ध है, संयोगज है परन्तु खेद है उसके उदय-काल में उसे तुम ऐसा विश्वास्य बना लेते हो मानो वह तुम्हारा हितू ही हो, अरे वही तो आपदा है, आपत्तिजनक है, आपत्तिजन्य है।

卐 ॐ 卐

२–४. विवेक तो अलग करने को कहते हैं और ज्ञान का वही फल है, तभी तो लोकों ने विवेक का अर्थ ज्ञान कर डाला अर्थात् भेद विज्ञान ही विवेक है।

卐 ॐ 卐

३–६. मनोहर! जो भी तुम्हें दिखता है, वह सब अजीव हैं, उनमें सुख गुण है ही नहीं, वे तुम्हें सुख कैसे दे सकते? अरे! जिनमें सुखगुण है ऐसे अन्य आत्मायें भी अपना सुखगुण तुम्हें त्रिकाल में नहीं दे सकते, सब

वस्तुयें अपने अपने गुणों में ही परिणमती हैं।

卐 ॐ 卐

४-६. भेदविज्ञान कल्याण मन्दिर का प्रारम्भिक सोपान है।

卐 ॐ 卐

५-७०. तेरा दृश्य पदार्थों और मनुष्यों से क्या सम्बन्ध ? जो निरन्तर इनके निमित्त से अपनी अनाकुलता खो बैठते हो।

卐 ॐ 卐

६-६६. भगवती प्रज्ञा के प्रसाद से आत्मा विजय प्राप्त करता है।

卐 ॐ 卐

७-१०१. क्या दर्पण में मुख देखने वाले का मुख दर्पण में चला जाता है ? यदि चला जाता तो शरीर मुख रहित हो जाना चाहिये सो बात है नहीं, बात यह है कि दर्पण की स्वच्छता में समक्ष वस्तु का प्रतिभास होता, इसलिये दर्पण का द्रष्टा मुखादि का भी द्रष्टा होजाता इसी तरह स्वच्छ आत्मा का द्रष्टा ज्ञाता विश्व का द्रष्टा ज्ञाता हो जाता परन्तु विश्व उस आत्मा में नहीं चला जाता।

卐 ॐ 卐

८-१०२. वृक्ष के नीचे रहने वाली छाया क्या वृक्ष की है ?

यदि वृक्ष की है तो वृक्ष के प्रदेशों में ही रहना चाहिये, क्योंकि जिस का जो गुण पर्याय होता उसके प्रदेशों में ही वह रहता, सो छाया तो वृक्ष प्रदेश में है नहीं, बात यह है कि वृक्ष के निमित्त से पृथ्वी की, छाया रूप अवस्था हुई, इसी तरह स्त्री पुत्र भोजन आदि के निमित्त से मोही के साता परिणाम रूप, सुख की विकार अवस्था होगई वह उसी का सुख है न कि स्त्री आदि का।

卐 ॐ 卐

९–१५२. अपने वर्तमान परिणाम की परीक्षा करिये। इसमें स्वभाव का झरना कितना बह रहा है और विभाव की कीच कितनी भरभरा रही है।

卐 ॐ 卐

१०–२२९. यदि अपने आत्मा को शुभाशुभयोगों से रोकना है और शुद्ध ज्ञानदर्शनमय आत्मा में ही प्रतिष्ठित करना है तब दृढ़ भेदविज्ञान का सहारा लो।

卐 ॐ 卐

११–२४७. केवल ज्ञाता द्रष्टा रहना ही शान्ति का रूप है, सो तेरा वह स्वभाव कहीं से लाना नहीं किन्तु इसका आच्छादक जो अहंकारता व ममकारता है उसका ध्वंस

करना है इसका उपाय भेदविज्ञान है इसे ही दृढ़ करो।

卐 ॐ 卐

१२–३६५. तुम अपने को मनुष्य, त्यागी, श्रावक, पंडित, मूर्ख, गुरु, शिष्य आदि कुछ मत समझो और समझो मैं चेतन हूं, चेतना (जानना) मेरा व्यापार है और चेतना में परिणत होना निजकार्य है, अन्य सब क्रियायें खतरनाक और मोहक हैं।

卐 ॐ 卐

१३–४४५. राग की वेदना मेटने का उपाय तो यह है कि राग के विषयभूत पदार्थ को अपने से भिन्न समझो तथा उस राग को भी अपने स्वभाव से भिन्न एवं अहितकारी समझो।

卐 ॐ 卐

१४–५१४. मन इन्द्रियों का दादा है इसका नाम अनिन्द्रिय (थोड़ी इन्द्रिय) न दिखने की अपेक्षा से है परन्तु यदि दौड़, विषय, अशान्ति आदि की अपेक्षा देखी जावे तो इन्द्रियों का दादा है, फिर भी यदि मन का वेग उलट दिया जाय तो हम सब अनादिकाल से भटकने वाले प्राणियों को तत्त्वपथ में लगाने वाला देवता है, वेग बदलने का पैंच भेदविज्ञान का अभ्यास है इसे ही

निरन्तर करो ।

卐 ॐ 卐

१५–७३१. आत्मा के सहज स्वभावमय ज्ञानदर्शनभाव से राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह आदि विभावों को पृथक् समझना भेदविज्ञान है ।

卐 ॐ 卐

१६–७३२. जहां क्रोधादि भाव ही आत्मा के स्वयं नहीं है फिर शरीर, पुत्र, मित्र, धन, मकान क्या आत्मा के कुछ हो सकते ? यथार्थ ज्ञान को अपनावो, वही तुम्हारा उद्धार करेगा ।

卐 ॐ 卐

१७–७३३. प्रतिष्ठा, यश, अपयश, सन्मान, अपमान आदि भी क्या आत्मा के हैं ? सब जुदे हैं उनका व्यामोह छोड़, सहज भाव को ही अपनावो ।

卐 ॐ 卐

१८–७५६. ज्ञानी के माप नहीं अर्थात् ज्ञानी पुरुष की क्रिया की दिशा, भावना, निर्मलता आदि की अवधि समझना बड़ा कठिन है, उसकी लीला को परमात्मा जाने व वही जाने ।

卐 ॐ 卐

१६-८२८. संसार यह चिल्लाता है—यह मेरी स्त्री है, यह मेरा बेटा है, यह मेरा धन है, यह मेरा मकान है, देखो ये ही शब्द भेदविज्ञान की बातें बता रहे हैं, यह मेरा है ऐसा कहने में यह ही तो आया—यह यह है—मैं मैं हूं—यह मेरा है, ऐसा तो कोई नहीं कहता मै बेटा हूं, मैं स्त्री हूं, मैं धन हूं, मैं मकान हूं आदि। भेदविज्ञान के लिये ज्यादह क्या परिश्रम करना, आंखों सामने बात है, न मानने का क्या इलाज ?

卐 ॐ 卐

०-८३३. जब भी तुम व्याकुल होओ तब तुम अपने आप अपनी सहायता करो अर्थात् भेदविज्ञान का आश्रय लो, संसार सब अपनी ही चेष्टा करता तुम्हारा कोई कुछ नहीं कर सकता।

卐 ॐ 卐

१-८३८. पर में आत्मकल्पना होने से जो वेदना होती है वह भेदविज्ञान से स्वयं नष्ट हो जाती है, दुःख से छूटने का उपाय भेदविज्ञान है, जीवन में

सदा इसकी भावना करो।

卐 ॐ 卐

२२-८४२. भेद विज्ञानी को कभी आकुलता नहीं होती, क्यों हो ? उसने तो सबसे पृथक् जो आत्मतत्त्व, उसे हस्तगत कर लिया है।

卐 ॐ 卐
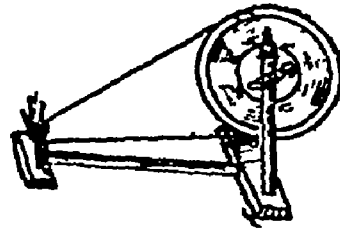
३ भक्ति

१–११. प्रभो ! रोकते रोकते चित्त कलुषित हो जाता है, यह आपके भक्त के लिये लज्जा की बात है और भक्ति के जीवित रहने का खतरा है, सुखार्थी का प्राण भक्ति है। हे देव ! इस खतरे (कलुषता) से बचाइये।

卐 ॐ 卐

२–१५. परमात्मा का स्मरण मोहसागर में डूबते हुए के लिये पवित्र व अविफल जहाज है।

卐 ॐ 卐

३–१६. हे भगवन् ! मुझ से सविधि अनतिचार चारित्र नहीं पलता, परन्तु आप जानते ही हैं— कि मै आप को छोड़ि अन्य का भक्त नहीं हूं मै और कुछ नहीं चाहता हूं ···"यही भक्ति दृढ़ हो जावे" केवल यही भावना है।

卐 ॐ 卐

४–३१. यदि तुम्हारा ध्यान, परमात्मा व शुद्धात्मा में नहीं जाता तो जहां जाता वहीं जाने दो, परन्तु स्वरूप तो

उसका यथार्थ विचारो। यथार्थ ज्ञान होते ही मन लौट आवेगा तब स्वयं शुद्धात्मा व परमात्मा को भक्ति हो ही जावेगी।

卐 ॐ 卐

५–४७. लोक कहते हैं—कि भगवान् भक्त में वसता है—इसका यह अर्थ है कि भक्त अपने ज्ञान द्वारा अपने में भगवान् के स्वरूप का वसा लेता है।

卐 ॐ 卐

६–७९. प्रभो ! कल्याण के लिये जो मेरा प्रयत्न है वह आपकी भक्ति है और जो आपकी भक्ति है वह मेरा सावधि रत्नत्रय है, इसके अतिरिक्त वर्तमान में मेरे और क्या करतूत हो सकती, परन्तु आपकी भक्ति के प्रसाद से आशा अत्यधिक है।

卐 ॐ 卐

७–१४५. परमात्मध्यान में ध्यान का विषय परमात्मा है, अतः परमात्मा मोह के नाश में निमित्त कारण है।

卐 ॐ 卐

८–१४५. परमात्मभक्ति, परभिन्ननिजात्मभक्ति, वस्तुस्वरूपावगम से मोह का विनाश होता है।

卐 ॐ 卐

९–१५९. हे प्रभो ! मैं तो आपको आत्मसमर्पण कर चुका, अब भी यदि आपके ज्ञान में मेरी अशुद्धता का विकल्प (ग्रहण) हो तो मेरा कोई अपराध नहीं; हे देव ! मुझ निमित्तक हुई एतावन्मात्र आपकी अशुद्धता मिट जावे ।

卐 ॐ 卐

१०–३१४. हे भगवन ! परलोक में मुझे धनी होने की चाह नहीं, धन असार और अहितरूप है । देव व भोगभूमिज मनुष्य होना नहीं चाहता वहां राग और मूर्छा के साधन प्रचुर हैं और असंयम का संताप है । तिर्यञ्च भी होना नही चाहता, वहां उत्कृष्ट धर्म सामग्रय नहीं अथवा कर्मभूमिज तिर्यञ्च व मनुष्य की गति इस भव से सम्यक्त्व सहित मरण से मिलती नहीं, सो मुझे सम्यक्त्व रहित अवस्था क्षण मात्र को भी इष्ट नहीं, तब मेरा क्या हाल होगा, हे नाथ ! तेरा ज्ञान प्रमाण व सहाय है ।

卐 ॐ 卐

१–४५०. भगवान के गुणों में अनुराग करो व्यवहार के काम तुम्हें शान्ति न पहुंचावेंगे ।

卐 ॐ 卐

२–४८८. हे परमात्मन् ! हे निर्दोष ! हे गुणाकर ! हे

पवित्र ज्ञानमय ! मैं···मैं···ज्ञानमात्रस्वभावी हूं, अब विकल्प का क्लेश नहीं सहा जाता। पूर्व संस्कार··· मुझे मोही तो नहीं बना रहे परन्तु भीरु और अधीर बना रहे हैं। हे शक्तिमय ! तुम सदा ही मेरे नयन-पथ में रहो।

卐 ॐ 卐

१३–५७६. हे परमात्मन् ! तू ही स्वाश्रित है, पूर्णज्ञ है और परमसुखी है, क्योंकि आप स्वरूपस्थ हैं।

卐 ॐ 卐

१४–७३८ हे चेतन्य प्रभो ! तेरी दया सब प्राणियों पर है कि तू अनादि अनिधन सब में विराजमान है परन्तु जो तेरा दर्शन कर पाते हैं वे अलौकिक फल प्राप्त कर लेते हैं।

卐 ॐ 卐

१५–७४२. परमात्मा या शुद्धात्मा की भक्ति से दूर रह कर कोई विरक्त नहीं हो सकता।

卐 ॐ 卐

१६–७५२. नास्तिक के जाप नहीं अर्थात् जो ब्रह्म (आत्मा) के सहजस्वरूप, परलोक व परमात्मा को नहीं मानते हैं

उनको जाप से प्रयोजन क्या ? व वे जाप ही क्या ? और किसका करें वे तो मिथ्यात्वकलंक से कलंकित हो रहे बेचारे दुःखसागर में डूब रहे हैं।

卐 ॐ 卐

१७–७५३. भक्त के शाप नहीं अर्थात् आत्मा के सहज-स्वरूप व परमात्मा के गुणों का ध्यानरूप सेवा करने वाले भक्त पुरुष पर किसी के क्रोध या कोसने का असर नहीं होता, वह तो सबकी उपेक्षा करके अपने निष्कण्टक मार्ग में विहार कर रहा है।

卐 ॐ 卐

१८–७७८ यदि तेरे उपयोग में भगवान् हैं तो तीर्थों, क्षेत्रों, मंदिरों आदि में भी (जहां तू ढूंढेगा) भगवान् हैं, यदि तेरे चित्त में भगवान नहीं तो कहीं भी नहीं।

卐 ॐ 卐

१९–१२७. स्वयं विरागता के अंश की व्यक्ति हुए बिना परमात्मा का स्मरण व अवलोकन असंभव है।

卐 ॐ 卐

२०–८६०. भगवान के गुणों में जब अनुराग बढ़ जाता है तब भक्ति हो ही जाती है...। कितना गोरखधंधा

है—जो भगवान से कुछ चाहता है उसे मिलता नहीं और जो भगवान की भक्ति करके भी कुछ नहीं चाहता उसके चरणों में सब कुछ लोटता फिरता है।

卐 ॐ 卐

२१–८६१ हे प्रभो! आप देना ही चाहते हैं तो सुनो मैं क्या चाहता हूं—मेरे कोई कभी चाह ही पैदा न हो—यही चाहता हूं, क्योंकि जो मैंने चाह बताई वह आपका स्वरूप है आपके स्वरूप से बढ़कर जगत में कुछ है भी क्या? जिसे मैं चाहूं।

卐 ॐ 卐

४ व्यवहार

१-५१. योग्यता होते हुए भी मुंह छिपाना व अधिकार होते हुए भी कुकृत्य को न रोकना या सत्कृत्य न करना भी अपना घातक अपराध है।

卐 ॐ 卐

२-५२. मनुष्य जोवन को आत्मकल्याण का सहकारी समझ कर जीने के लिये खावो पर खाने के लिये मत जियो।

卐 ॐ 卐

३-५४. अपने पक्ष को सबल सम्पादन करने के अर्थ असत् बातों का प्रयोग न करें तो सफलता मिलेगी।

卐 ॐ 卐

४-६७. मोक्षमार्ग के साधक को धार्मिक संस्थाओं के झंझट में भी नहीं पड़ना चाहिये, क्योंकि लोक जुदे जुदे ख्याल के होते हैं, अपने अभिप्राय के अनुकूल कार्य का होना अत्यन्त कठिन है।

卐 ॐ 卐

५-७४-यदि शान्ति चाहते हो तब किसी कार्य में मुखिया

मत बनो, कोई कार्य उचित जचता हो तो उसे बतलाकर अरत बने रहो, इसमें कुछ कष्ट भी नहीं क्योंकि तुमने शान्ति के लिये नैष्ठिक श्रावक का व्रत लिया है।

卐 ॐ 卐

६–६० व्यवहार और निश्चय ये दृष्टि के भेद हैं चेष्टा के भेद नहीं, जहां व्यवहार हेय बताया उसका अर्थ यह नहीं कि शील, तप, व्रत, पूजा, वंदना आदि क्रिया हेय हैं किन्तु ये चेष्टायें ही मोक्षमार्ग हैं यह दृष्टि हेय है, मोक्ष-मार्ग तो वीतरागभाव है पर उसके पूर्व में व्रतादि हुआ करते हैं।

卐 ॐ 卐

७–६१. यदि कोई व्यवहार के भय से शील, तप, व्रत, सामायिक, स्वाध्याय वंदनादि छोड़ने का प्रयत्न करे तब उसके कुशील स्वच्छंदता असंयम आदि चेष्टायें हो जायँगी जो कि प्रकट संसार व संसार का मार्ग है।

卐 ॐ 卐

८-६८. व्यवहार यद्यपि निश्चय नहीं तो भी व्यवहार के होते हुए भी निश्चय मिलता जैसे दूध से घी, यह प्राथमिक अवस्था वालों को उपाय उपेय का सम्बन्ध बताने के लिये स्थूल दृष्टान्त है।

卐 ॐ 卐

९–१०७. जहां व्यवहार को निश्चय का कारण बताया वहां "व्रतादि क्रियायें ही मोक्षमार्ग है ऐसी दृष्टि" यह व्यवहार का अर्थ नहीं करना क्योंकि वह तो मिथ्यात्व ही है किन्तु "निश्चय की प्राप्ति के अर्थ हो जाने वाली व्रतादि क्रियायें व धर्मध्यानरूप मन, वचन, काय का व्यापार" यह अर्थ करना, यह व्यवहार निमित्त से कारण है।

卐 ॐ 卐

१०–१७८. सुवर्ण के आभूषण का उपादान सोना ही है परन्तु ढाचे में ढलने का निमित्त पाये बिना वह अवस्था नहीं होती, इसी प्रकार ज्ञान की विरागता का उपादान ज्ञान ही है पर दीक्षा, शिक्षा, आत्मसंस्कार, सल्लेखना और उत्तमार्थ आदि तत्साधक व्यवहार में ढाने बिना वह अवस्था नहीं होती फिर भी उस अवस्था की प्राप्ति के लिये दृष्टि उपादान पर होती है तब ही वे व्यवहार भी तत्साधक कहलाते हैं।

卐 ॐ 卐

११–२४३. यदि व्यवहार सर्वथा अभूतार्थ है तो क्या कारण है जो अहिंसा, सत्य, पूजा, वंदनादि में धर्म का व्यवहार किया जाता है और हिंसा, झूठ आदि में धर्म

का व्यवहार नहीं किया जाता।

卐 ॐ 卐

१२-२४४. यद्यपि दया, सत्य, स्वाध्याय आदि को व्यवहार से धर्म कहा पर इन्हीं में क्यों उपचार किया इसका कारण "निश्चय धर्म के विकास में निमित्तमात्र होना" है, बिना कुछ सम्बन्ध हुए किसी का किसी में आरोप नहीं किया जाता।

卐 ॐ 卐

१३-५८६. क्रोध करने वाला अपनी शक्ति और सुख शान्ति का स्वयं विनाश करता है और दूसरों के लिये भयंकर और अविश्वास्य हो जाता है, अतः शान्ति के इच्छुकों को भेदज्ञानी रह कर क्रोध से दूर रहना चाहिये और व्यवहार भी शांतिमय करना चाहिये इसमें दोनों (स्व पर) को हानि नहीं उठाना पड़ती।

卐 ॐ 卐

१४-५८७. मान करने वाला अपनी शक्ति और सुख शान्ति का स्वयं विनाश करता है और दूसरों के लिये ग्लानि के योग्य और अप्रिय हो जाता है, अतः सुख चाहने वालों को आत्मस्वरूप जानते हुए मिथ्या मान से बिल्कुल मुख मोड़ लेना चाहिये और व्यवहार करते समय उनके

सन्मान की रक्षा करना चाहिये इसमें स्व-पर दोनों को हानि नहीं उठाना पड़ती।

卐 ॐ 卐

१५—५८८. मायावी का चित्त विरुद्धविकल्पबहुल होने से उडनखटोला की तरह चित अस्थिर रहता है, सदैव आकुलित रहता है और दूसरों के लिये अविश्वास्य व घातक हो जाता है, उसकी फिर कोई इज्जत नहीं रहती अतश्च दर दर भटक कर दुखी होता है इसलिये सुख चाहने वाले ज्ञानमात्र आत्मा का आदर कर कुटिल भाव उत्पन्न न होने दें और व्यवहार करते समय सब के हित का ध्यान रखें व सरल व्यवहार करें, इसमें स्वयं व दूसरों को हानि नहीं उठाना पड़ती।

卐 ॐ 卐

१६—५८९. लोभ करने वाला अपनी शक्ति और सुखशान्ति का स्वयं विनाश करता है, शंका, भय, चिन्ता, कायरता, अविवेक आदि दुर्गुणों का मूल लोभ है, लोभी पुरुष विचित्र कल्पनाओं व शंकाओं से सदैव दुखी रहता है और दूसरों के लिये अहित बन जाता है, अतः सुखैषी समस्त पर पदार्थों से भिन्न आत्मस्वरूप को ही अपना मान कर निर्लोभ व्यवहार करना चाहिये जिससे प्राप्त

वस्तु का सदुपयोग हो तथा स्व-पर दोनों के प्रसन्नता और निर्मलता रहे।

卐 ॐ 卐

१७–६१६. तुम तो अनादि अनंत हो किसी एक पर्याय रूप नहीं हो, जब इस पर्याय रूप ही तुम नहीं हो तब इस पर्याय के व्यवहार में क्या रुचि करना है।

卐 ॐ 卐

१८–५६२. जब तुम त्यागी न थे मात्र पंडित थे तब तुम व्यवहार कार्य में व्यासक्त त्यागियों को देखकर अपने मन में मुग्ध और नरभव को व्यर्थ खोने वाले मानते थे किन्तु अब तुम स्वयं त्यागी हो कर अपने आपको उस प्रकार अपने मन में नहीं सोचते ? कितनी गहरी मोहमदिरा पी ली।

卐 ॐ 卐

१९–६६६. व्यवहार में किसी के बल पर कोई कार्य मत करो, जिसे आप कर सकते हो उस कार्य को करो अन्यथा शल्य और सक्लेश हो जायगा।

卐 ॐ 卐

२०–७३९. बिगड़े हुए व दुर्जनों का सुधार सरल व्यवहार

से हो सकता है, कठोर व्यवहार से नहीं, अतः प्रेम से समझा कर उन्हें सत्पथ पर लाओ।

卐 ॐ 卐

२१–८५६. यदि बालक भी शिक्षा की बात कहे तब उसे मान लो हठ मत करो।

卐 ॐ 卐

२२–८७१. अपना वह व्यवहार रखो—जिसमें दूसरे को कोई पीड़ा न हो, भाव अपना सबके हित का रखो और प्रवृत्ति भी हित बुद्धि से करो फिर भी भ्रमवश कोई दुःखी रहे तब तेरा कोई अपराध नही।

卐 ॐ 卐
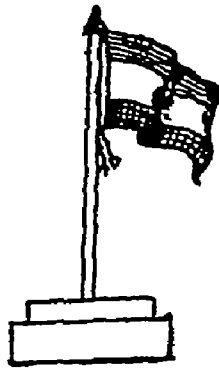
५ यश-अपयश

१-१६. ख्याति की चाह न रखने वाला ही सच्चा अध्यात्मयोगी और सुखी बन सकता है।

卐 ॐ 卐

२-१०. ख्याति के त्याग के उपदेश में यदि ख्याति का उद्देश्य रहा तब व्रती का वेश निरर्थक है।

卐 ॐ 卐

३-२७. मनोहर! जरा बताओ कि मृत्यु के बाद यहां की नामवरी साथ जावेगी या भला बुरा संस्कार? यदि दूसरा पक्ष तुम्हारा उत्तर है तब पहिले पक्ष से ममत्व छोड़ो या वहां रहो जहां के लोक तुम्हारे परिचित न हों।

卐 ॐ 卐

४-४५. किसी की अपकीर्ति कर कीर्ति नहीं मिलती।

५-१६४. अपयश का कार्य न करते हुए भी अपयश होने का भय यश की चाह के बिना नहीं हो सकता।

卐 ॐ 卐

१८२. संसार में अपने को महान् सिद्ध कर देने की इच्छा या अपना नाम या अस्तित्व स्थापित कर देने की इच्छा यदि नष्ट हो जाय तो तब से व्रत प्रारम्भ करने का अधिकारी हो सकता है, अपने भाव को खोजो, यदि वह इच्छा है तब व्रत का ढौंग है। यदि कल्याण चाहते हो तो पहले योग्य तर्कणाओं से उस इच्छा की होली कर दो।

卐 ॐ 卐

१८३. संसारभाव दुर्लक्ष्य है यश की चाह न करने का उपदेश देकर भी यश की चाह की पुष्टि की जा सकती है। जो उपदेश का लक्ष्य पर को ही बनाते हैं वे मुग्ध हैं और जो स्वयं को बनाते वे सावधान हैं।

卐 ॐ 卐

१९३. यश सदा नहीं रहता इसलिये यश अनित्य, जिनमें यश चाहा जाता वे भी तदवस्थ न रहने से अनित्य, जो यश चाहता वह भी तदवस्थ न रहने से अनित्य, परन्तु यह बड़ी मूर्खता व विडंबना है—जो अनित्य अनित्य को अनित्यों में नित्य बनाना चाहता है।

卐 ॐ 卐

१९४. यदि यश की चाह है तो ऐसा यश प्राप्त करो

जिसे रागी और विरागी दोनों ही गावें ।

卐 ॐ 卐

१०--१६५. रागी के कृत्य का यश रागी ही व उनमें खास रिश्तेदार ही गाते परन्तु वीतरागता से होने वाला यश रागी (गृहस्थों) के द्वारा व विरागी (साधुवों) के द्वारा भी गाया जाता है ।

卐 ॐ 卐

११–२१८ ऐ दो दिन की जिन्दगी वालो ! दो दिन की जिन्दगी वालों में दो दिन तक ही स्वार्थियों द्वारा गाया जा सकने वाला यश चाह कर क्यों अज्ञानी बन कर दुखी होते हो ।

卐 ॐ 卐

११–२४२. जिसकी कीर्ति जितने विस्तृत क्षेत्र में फैली होती है उसी पुरुष के यदि अकीर्ति का थोड़ा भी कृत्य बन जाय तो अकीर्ति उतने विस्तृत क्षेत्र में अनायास शीघ्र फैल जाती हैं, जैसे तेल की एक बूंद भी सारे जल में अनायास शीघ्र फैल जाता है ।

卐 ॐ 卐

१३–२३७. सकलत्र, ससंतान, धनी, परोपकारी, बहुप्रिय, त्यागी, दानी, व्याख्याता आदि बनने के परिश्रम करने

का मूल प्रायः ख्याति है। भेदविज्ञान से इस मूल के नाश करने पर शान्तिमार्ग मिलता है।

卐 ॐ 卐

१४–३४१ जिसे ख्याति की चाह है उसे आत्मज्ञान नहीं; यदि आत्मज्ञान होता तब उसकी चाह ही नहीं करता।

卐 ॐ 卐

१५–४३०. प्रसिद्धि से आत्मशुद्धि का सम्बन्ध नहीं है, प्रसिद्धि अनाकुलता का मूल नहीं, आत्मशुद्धि अनाकुलता का मूल है।

卐 ॐ 卐

१६–४७५. चाहे विपुलधनी हो या विद्वत्सम्मत हो या जगद्विख्यात हो किसी का भी यश या लोकप्रियत्व स्थिर नहीं है।

卐 ॐ 卐

१७–४९९. जो प्रसिद्ध हैं व प्रसिद्धिकर्ता है उनकी यह स्थिति स्वप्नवत् है, उनकी परिणति देख कर व सोचकर मोह व आश्चर्य उत्पन्न मत होने दो, द्रव्य-दृष्टि द्वारा अनादिनिधन ज्ञायक आत्मा का स्वरूप समझ कर निज ही में संतुष्ट, रत होओ और परिणामात्मक इस

जगत् से विकल्प हटा कर सुखी होओो।

卐 ॐ. 卐

१८-५६६. दिखने में कान नाक आंख आदि आते आत्मा नहीं आता तब आत्मा का यश क्या ? सुनने व बोलने में नाम के ही शब्द आते आत्मा नहीं, तब आत्मा का यश ही क्या ? लिखने में नाम के अक्षर ही आते आत्मा नहीं तब अक्षरों से आत्मा का यश क्या ? हे आत्मन् ! किसे आत्मा मानकर परेशान हो रहे हो ? मन वचन काय के प्रयत्न को छोडकर सहज स्वरूपी होओो।

卐 ॐ 卐

१६-५८५ कीर्ति से आत्मा को क्या मिलता ? कुछ नहीं, जिसकी कीर्ति होती है मान लो उसे एक ग्राम के लोक जान गये या एक जाति के लोक जान गये तो शेष ग्राम व जाति के लोकों ने तो समझा नहीं, मान लो सब मनुष्य जान गये तो पशु पक्षी देव आदि ने तो समझा ही नही, मान लो असंभव भी संभव हो जाय कि सब जीव जान जाँय तथापि सब जीव मिलकर भी उसकी परिणति सुखमय नहीं कर सकते, स्वयं का विरक्ति भाव ही सुखी बनावेगा।

卐 ॐ 卐

२०–६२६. यह आत्मा यश किसका चाहता है ? आत्मा का या सूरत का या नाम के अक्षरों का ? ···विचार करने पर यश कुछ भी वस्तु नहीं रहती।

卐 ॐ 卐

२१–६३०. यदि आत्मा का यश चाहते हो तो···जो लोग प्रशंसा करते हैं वे आत्मा को क्या जानते हैं ?··· आत्मा तो अरस, अरूप, अगंध, अशब्द, अव्यक्त, चेतन व निराकार है,···जिस स्वरूप की दृष्टि में वह सामान्य रूप है उसका तो नाम भी नहीं और न व्यवहार के लिये व्यक्तित्व है उसकी क्या प्रतिष्ठा होती, उसकी तो प्रतिष्ठा यही है जो स्वयं स्वयं को जाने और स्वयं के स्वरूप में प्रतिष्ठित रहे।

卐 ॐ 卐

२२–६३१. यदि सूरत का यश चाहते हो तो···सूरत पौद्गलिक है अपने से अत्यन्त भिन्न है हाड़ मास चाम का पुतला है उसका गुण तो रूप रस गंध स्पर्श हैं उन्हीं में परिणमतो है, अन्य गुण ही उसमें ऐसे क्या हैं जिससे सूरत प्रतिष्ठा के योग्य हो अथवा सूरत की प्रतिष्ठा से आत्मा को क्या मिल जाता ? सूरत की चित्र रह

जाने पर भी आत्मा की क्या प्रतिष्ठा हुई ?

卐 ॐ 卐

२३-६३२. यदि नाम के अक्षरों का यश चाहते हो तो··· उन अक्षरों से आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं, न अक्षरों से आत्मा का परिचय मिलता है, उन लिखित अक्षरों से या बोले हुए अक्षरों से आत्मा को कोई शान्ति प्राप्त नहीं होती, आत्मा तो आत्मा है, अपनी करतूतों का फल पाता है उसकी करतूत भी अव्यक्त है।

卐 ॐ 卐

२४-६३६. हज़ारों मूढ़ों की अपेक्षा एक ही ज्ञानी की दृष्टि में ख्याति होना बड़ी कीमत रखता है, अथवा किसी की दृष्टि में कुछ जचे इस से आत्मा की उन्नति नहीं, शान्ति नहीं, आत्मन्! तुम्हारा काम केवल जानना है, सो मात्र ज्ञाता रहो फिर सुख ही सुख है।

卐 ॐ 卐

२५-८५२. न तो यश हित का साधक है और न अपयश हित का बाधक है, हित का साधक तो इच्छा का अभाव है और हित का बाधक इच्छा का सद्भाव है।

卐 ॐ 卐

—:*:—

६ प्रशंसा-निन्दा

१-१३९ अपने महत्त्व की सिद्धि के अर्थ दूसरों की निन्दा कहने या सुनने में रुचि न कर, आत्मा का महत्त्व अपने आप है।...समुद्र का महत्त्व तालाबों की तुच्छता बताने से नहीं है किन्तु स्वयं है।

卐 ॐ 卐

२-१४०. दूसरों की निन्दा करने या सुनने में रुचि होना ही तेरी लघुता (तुच्छता) का सूचक है, फिर उस उपाय से महत्व की कैसे आशा हो सकती है।

卐 ॐ 卐

३-१४१. अपनी प्रशंसा सुनने में हर्ष और रुचि न करो, स्वप्रशंसाश्रवण ही मोही जीवों को बड़ी विपदा है, इसका फल नीच गोत्र में पैदा होना है।

卐 ॐ 卐

४-१४२. पहिले तो संसार ही नीच पद है उसमें भी नरक तिर्यञ्च दीन अङ्गहीन मनुष्य आदि जैसी निम्न

अवस्थाओं में पैदा होना अपनी प्रशंसा करने व सुनने में रति होने का फल है।

卐 ॐ 卐

५-२१७. मनोहर! यदि कोई तुम्हारी प्रशसा करे तो उस उपद्रव से बचने के लिये परमेष्ठी के शरण पहुंचो, णमोकार मंत्र का स्मरण करते रहो व आत्मचिंतन करने लगो।

卐 ॐ 卐

६-२२०. प्रत्यक्ष व परोक्ष किसी भी प्रकार दूसरे की निन्दा करने वाला अशान्त ही रहता है इसलिये परनिन्दा करना अपने आप दुःख मोल लेना है, यदि तुम में बल, विवेक, धैर्य, एवं अनुग्रहबुद्धि है तो उसी से स्वयं एकान्त में कहो अन्यथा परदोषवाद में मौन रहो।

卐 ॐ 卐

७-२२१. सर्वोत्कृष्ट प्रशंसा के योग्य निर्दोष आत्मा (परमात्मा) है, तू तो सदोष है, अनधिकार बात मत चाहो।

卐 ॐ 卐

८-२२२. बहुत कुछ गुण होते हुए भी यदि विकल्प है तो एक यही दोष है, जब तक दोष है तब तक प्रशंस्य नहीं

और जब प्रशंस्य होगा तब कोई विकल्प नहीं अतः अभिमान था सन्मान की चाह को मूल से नष्ट कर दो, यह तेरा महान् शत्रु है।

卐 ॐ 卐

९–३२३. स्वप्रशंसा में रुचि होना ही विषपान करना है और स्वयं को ज्ञानमात्र अनुभव करना ही अमृतपान करना है।

卐 ॐ 卐

१०–३२४. जब कोई तेरी प्रशंसा करे तब यह तो विचारो– कि यह तो मेरे वाह्य गुण ही वर्णन कर रहा है मैं तो अनंत ज्ञान, दर्शन शक्ति, सुखसम्पन्न निर्विकल्प, ज्ञायक-भावमय योगीन्द्रगोचर हूं शुद्ध परमात्मतत्त्व हूं, इस तुच्छ प्रशंसा में मेरा क्या हित और बड़प्पन है, इस वेचारे को मेरी (आत्मा की) महत्ता ज्ञात नहीं है।

卐 ॐ 卐

११–३२५. अथवा यह विचारो—जैसा यह वर्णन कर रहा है ठीक वैसा निर्दोष तो मैं हूं नहीं, केवल इसके वर्णन-मात्र से तो फल (आत्मशान्ति) मिल नहीं जायगा बल्कि यह प्रशंसा मेरे प्रति शत्रुता का काम करेगी अर्थात् इससे मैं अपने दोषों पर दृष्टिपात न कर झूठ

मूठ बड़प्पन में आकर अथवा विशेष रागी बनकर पर-परिणति के परिश्रमरूप क्लेशों को ही सहता रहूंगा ।

卐 ॐ 卐

१२-३५१. निन्दाश्रवण से होने वाले क्लेश का मिटाना तो सरल है परन्तु प्रशंसाश्रवण से किये जाने वाले उपक्रमों से होने वाला क्लेश मिटाना कठिन है, अतः मनोहर ! प्रशंसा जाल से बचो किसी के चक्र में मत आवो ।

卐 ॐ 卐

१३-३६१. किसी के निन्दा के शब्द मत कहो क्योंकि उस से तुम्हारा उत्कर्ष नहीं और फिर संसार में अनंत प्राणी हैं किस किस की समालोचना करते ? उनमें से एक वह भी है, अथवा तुम समालोचना के अधिकारी नहीं क्यों कि तुम स्वयं समालोच्य हो अन्यथा तुम में परनिन्दन दोष की स्थिति नहीं रहती ।

卐 ॐ 卐

१४-३६२. अपनी प्रशंसा के शब्द मत सुनो क्योंकि ये शब्द आत्मघात में निमित्त होने के अतिरिक्त प्रशंसक से हो जाने वाले सम्बन्ध के हेतु विपत्ति और चिन्ता

में निमित्त हो सकते, यदि कोई तुम्हारी प्रशंसा ही करे रुके नहीं तब तुम उपद्रव सा समझकर णमोकार मन्त्र को स्मरण करते रहो।

卐 ॐ 卐

१५–४००. प्रशंसा किये जाने पर संतुष्ट होना कापोतलेश्या है, यदि इस कापोतलेश्या को नहीं जीत सके तो अशुभ परिणामी ही हो, शुभलेश्या का वहां भाव ही पैदा नहीं हो सकता अतः रचनात्मक सुख का मंत्र यही है जो प्रशंसा को क्लेश की खान मान कर उसमें संतुष्ट मत होवो और योगिगवृद्धि की भावना करो।

卐 ॐ 卐

१६–४२३. यदि कोई तुम्हारी बुराई करता है तो यह सोचो कि यह दोष तुझ में है या नहीं? यदि है तब बुरा मानने की बात ही क्या? वह तो तुम्हें शिक्षा दे रहा है अतः परम मित्र है।

卐 ॐ 卐

१७–५०५. अपने व दृश्य मनुष्यों के प्रति सोचो—इन दृश्य मानवों ने यदि मुझे कुछ अच्छा कह दिया तो मुझे क्या मिल गया? कौन से हित की वृद्धि हुई? मैं

तो मुसाफिर ही हैं, कुछ दिन इस शरीर रूपी धर्मशाला में रह कर और फिर छोड़ कर जाना ही होगा, वहां क्या होगा? ये सहाय न होंगे अतः चेत विकल्पजाल को छोड़, अपनी ओर दृष्टि दे।

卐 ॐ 卐

१८-५४६. निन्दा का वातावरण अशान्ति का ही कारण है, निन्दा करने या निन्दा सुनने से लाभ तो कुछ भी नहीं प्रत्युत पाप का अवलेप ही है इससे कोसों दूर रहो।

卐 ॐ 卐

१९-५४७. निन्दा करने वाला स्वयं निन्द्य है तथा न लोकों में उसका प्रभाव रहता निन्दा करने वाला तो इसी लिये निन्दा करता है कि मेरा बड़प्पन हो परन्तु होता उल्टा ही, अर्थात् उसका महत्व सब गिर जाता है।

卐 ॐ 卐

२०-५८१. प्रशंसा के समय अध्यात्मयोग रखने वाला प्रशंसा के चक्कर में दुःख न पावेगा।

卐 ॐ 卐

२१-१०४. अपनी प्रशंसा सुनने में रुचि होना पुण्य का

विनाश करना है और पाप को बुलाना है व सँसार में भटकने के लिये स्वयं अमंगल करना है।

卐 ॐ 卐

२२–५६३. बस...बस...ठीक है मेरे चतुष्टय में रहने वाला मैं सर्व विश्व से भिन्न हूं कोई कितनी ही भक्ति करे प्रशँसा करे, मेरे लिये उससे क्या मिलेगा ? कुछ नहीं प्रत्युत पतन का ही साधन है।

卐 ॐ 卐

२३–७५४. प्रशंसा करने वाले ने तुम्हें दे क्या दिया ? वह तो आप में क्षोभ पैदा करके संकल्प विकल्प की चक्की चला कर भाग गया। विचार तो सही...प्रशंसा में वहे मत।

卐 ॐ 卐

४–७५५. निन्दा करने वाले ने तेरा हर क्या लिया ? वह तो बेचारा अपने शिर पाप लाध कर आपको दोष कह कर (चाहे वह हों या न हों) स्थिर व सावधान कर गया...सुखी रह।

卐 ॐ 卐

२५–७६३. जो तुम्हारे सामने अन्य की निन्दा करता रहता हो···समझो वह तुम्हारे परोक्ष में तुम्हारी भी निन्दा करता होगा क्योंकि उसके तो निन्दा करने की निन्द्य आदत पड रही है, अतः निन्दक से सावधान रहो।

卐 ॐ 卐

२६–८२९. यदि सारा संसार भी निन्दा करे तब भी तेरा क्या बिगड़ा ? उनका मुख है उनकी इच्छा है जो चाहे कहें, तेरा क्या छुड़ाया ? मूर्ख न बन अपने चैतन्य भगवान की कृपा पा।

卐 ॐ 卐

२७–८३४. जो दूसरों की निन्दा करते हैं वे अपनी प्रशंसा चाहते हैं यह बात स्वयं सिद्ध हो जाती है, जो अपनी प्रशंसा चाहते हैं वे मूढ़ हैं, मूढ़ों का संग अशान्ति का ही निमित्त है उस संग को त्यागो या समझाने अथवा चर्चा के द्वारा उसको प्रकाश में जाने दो।

卐 ॐ 卐

२८–८५२. प्रशंसा और निन्दा दोनों मूढ़ आत्मा के आत्-

सिद्धि में बाधा होती है परन्तु ज्ञानी जीव को न प्रशंसा बाधक है और न निन्दा बाधक है। प्रत्युत साहसी, उत्साही, दृढ़ बना देने में दोष दिखाने, दोष दूर करा देने में प्रशंसा व निन्दा साधक हो जाती है।

卐 ॐ 卐

७ सन्मान-अपमान

१--११६. जिन आत्माओं से आप आदर यश चाहते हो, उन्हें पहिचाना है या नहीं; पहिचाना! यह बात तो झूठ है क्योंकि उनका यथार्थ रूप जानने वाले के आदर व ख्याति की चाह नहीं हो सकती, अतः यदि पहिचान लिया तो सन्मान व प्रसिद्धि की चाह छूट जाना चाहिये, यदि नहीं पहिचाना तो अज्ञात से सन्मान चाहना मूर्खता है।

卐 ॐ 卐

२-२६३. जो खुद के सन्मान की चेष्टा करता है वह अपमान के सन्मुख है, अरे! यहां तो सभी आत्मा एक हैं, जिस दृष्टि में मान अपमान का भाव होता वह दृष्टि ही अभूतार्थ है।

卐 ॐ 卐

३-३७८. नम्रता की परीक्षा अधिकगुणी या अधिक यश वाले पुरुषों के समागम में होती है।

卐 ॐ 卐

४–४=४. ज्ञायकभाव तुम्हारा मान तुम ही कर सकते हो व अपमान भी तुम ही कर सकते हो, अन्य कोई तुम्हारा मान अपमान कर ही नहीं सकता, जिससे लोग बोलते वह तुम नही हो अतः मान अपमान की उपेक्षा ही करते जावा, लोकव्यवहार को मान अपमान समझ कर मूर्ख मत बनो।

卐 ॐ 卐

५–५७६. जिस रूप में लोक मुझे देखते हैं या देखने का अनुमान करते हैं वह निमित्ताधीन होने से स्वयं असत् है, और जिस रूप में मैं हूं वह सब के लिये सामान्य है, असत् का सन्मान अपमान क्या और सामान्य का सन्मान अपमान क्या ?

卐 ॐ 卐

६-६२९. लोक कहते हैं—कि ये गुरुकुल चला रहे हैं अन्य संस्थायें चला रहे हैं, व्यवस्था कर रहे हैं उपकार कर हैं आदि, किन्तु ये सब शब्द मेरे अपमान के हैं। मैं समझ भी रहा हूं कि ये अपमान के शब्द हैं क्योंकि मेरा कर्तव्य तो निवृत्तिपथगमन ही है इससे उल्टी बात सुनना अपमान ही तो है, तो भी यह अपमान अपनी कमजोरी से गुरुकुल शिक्षासदनों के लिये चेष्टा कर करा

रहा हूं, अब इस अपमान के सह लेने के लायक राग नहीं रहा अतः क्लेश होने लगा। इस अपमान के मूलरूप विभाव को दूर ही करना है, जो हो चुका सो हो चुका।

卐 ॐ 卐

७–६३८. मुझे लाभ नहीं जो जनता मेरे समीप आवे, मुझे लाभ नहीं जो उपकार के कोई गुण गावे. कोई क्या कहेगा···यही तो कहेगा···इन्होंने संस्थायें चलवाई भवन बनवाये···उपदेश दिया···अच्छा प्रभाव है आदि सो सोचो जो पर पदार्थ के कर्तापन की बात लादे वह वह ज्ञानियों की दृष्टि में सन्मान है या अपमान ?

卐 ॐ 卐

८–७२८. कोई भी प्राणी तुम्हारे द्वारा तिरस्कार के योग्य नहीं, ये तो सब स्वतन्त्र पदार्थ हैं तेरा सम्बन्ध क्या ? तिरस्कार करो अपने क्रोध मान माया लोभ का···करो तिरस्कार और तेजी से करो, इन्हीं कषायों ने तुझे भटका रक्खा है और दुःखी कर रखा है।

卐 ॐ 卐

९–७६४. सब जीवों को अपने ही समान चैतन्य पुञ्ज को

देख···अब बता···तुझसे कौन कम है जिसको नाम बताता फिरे ।

卐 ॐ 卐

१०–७६५. अपनी परिस्थिति को देख, इस समय तू ने पाया ही क्या ? जिस पर मान किया जावे···वैभव और ऐश्वर्य !···चक्रवर्ती को देख तेरे पास है ही क्या ? सो भी चक्री का वैभव विलीन हो जाता है।···ऋद्धि चमत्कार ?···महर्षियों को देख तूने पाया ही क्या ?··· ज्ञान ?···सर्वज्ञ को सोच। अरे तू तो अपनी राग द्वेष आदि के सम्बन्ध से कलङ्कित है, गरीब है, क्या इतराता ?

卐 ॐ 卐

११–७६६. आत्मन् ! अपने अनंत ज्ञान दर्शन शक्ति सुख स्वभाव को तो देख, और देख···यदि तू यश मान वैभव पर ही इतराता रहा तो अनंत ऐश्वर्य से हाथ धो बैठ ।

卐 ॐ 卐

१२–७६७. यदि नाक के लिये मरेगा तो मर कर इतनी नाक पावेगा जो धरती पर लटकती रहेगी··· । मान के लिये जितना प्रयत्न करोगे उसका फल यह होगा जो

अन्त में तुम्हारा मान धूल में मिल जावेगा।

卐 ॐ 卐

१३–८५४. सारा देश सन्मान करे तो भी यदि भीतर पोल है अर्थात् मिथ्या वासना है तब क्या सुखी हो जायगा ? नहीं क्योंकि सन्मान सुख का साधन नहीं, आत्मज्ञान सुख का मार्ग है।

卐 ॐ 卐

१४–८५५. सारा देश अपमान करे तो भी यदि आत्मज्ञान है स्वच्छता है निजदृष्टि है तो उसका क्या बिगाड़ है ?

卐 ॐ 卐

८ समता

१–३६. जितना प्रयत्न व परिश्रम पर द्रव्य के उपार्जन या रक्षण में किया जाता उससे कम भी यदि समताभाव के संभालने में किया जावे तो सांसारिक वैभव तो अनायास प्राप्त होते ही हैं पर अनाकुल सुख की प्राप्ति में भी विलंब नहीं होगा।

卐 ॐ 卐

२–३८ पर द्रव्य का आश्रय कर कुछ भी अध्यवसान कर दुखी हो लो और आगे दुखी होने के लिये कर्म बांध लो किन्तु पर द्रव्य कभी सहाय होने का नहीं। मात्र अपने समता परिणाम का विश्वास रखो।

卐 ॐ 卐

३–४८. तामस भाव से कलह बढ़ती और इसके विपरीत (तामस=समता) भाव से चलने से कलह की होली हो जाती है (कलह नष्ट हो जाता है)।

卐 ॐ 卐

४–१०३ मनोहर ! तुझ पर ३-१६-२०-२२ वर्ष की अवस्था में ऐसा संकट आया जो जीवन की आशा ही न थी। यदि जभी नर भव छूट जाता तो किस गति में जाकर क्या आकुलतायें करते; आयुवश यदि अभी भी जीवित हो तब विपदा, व्याधि और मरण का भय न करके समता सुधा का पान कर अमर होने का प्रयत्न करो।

卐 ॐ 卐

५–१७७. मान अपमान में, सरस नीरस आहार में, आहार अनाहार में, लाभ अलाभ में, जीवन मरण में, संपत्ति विपत्ति में, पूजक वन्धक में समता होना ही शांति व स्वाधीन सुख है। इसका प्रारम्भ भेद विज्ञान ही है।

卐 ॐ 卐

६–२००. पर वश नरक वेदना सहना पड़ती पर स्ववश रंच वेदना नहीं सही जाती। यदि स्ववश समतापूर्वक वेदना सहने का उत्साह आ जावे तब कल्याण कुछ भी दूर नहीं।

卐 ॐ 卐

७–२२५. यदि कल्पना में यह सोच लिया कि यही मेरी मृत्यु का समय है तब भी समता की झलक दिखाई दे जावे।

मोल ली है, यह है तो स्वयं सुखी परन्तु मानता है पर से या होना चाहता है पर से। इस अज्ञानरूप मोहिनी धूल को हटावो और मुझे अपने में तन्मय करो।

卐 ॐ 卐

१२–३२८ सर्व प्राणियों में यथार्थ मैत्री भाव चाहते हो तो सब को अपने स्वभाव के मानो, क्योंकि समान माने बिना मैत्री भाव नहीं ठहर॰॰॰॰ और मैत्री भाव के बिना अशान्त ही रहोगे।

卐 ॐ 卐

१३–२६५. आत्मन्! तू विश्व के प्राणियों को अपने समान मान, क्योंकि उन्हें यदि छोटा मानोगे तो अभिमान के कारण संसारगर्त में पतित ही रहोगे और यदि बड़ा मानोगे तो दीन बनकर स्वभाव से च्युत ही रहोगे।

卐 ॐ 卐

१४–७८५. मुक्त जीव तो सर्व समान हैं ही, परन्तु यहां भी हम किसे छोटा और किसे बड़ा कहें? क्योंकि पुण्य पाप के उदय सब क्षणिक हैं जो आज पुण्य के उदय में बड़ा बना है—पुण्य क्षीण होजाने पर तुच्छ हो जाता और जो आज छोटे हैं—भविष्य में बड़े भी हो जाते हैं, तुम तो चैतन्यमात्र को देखो उसकी अपेक्षा

सब समान ही हैं। इसी चैतन्य के दर्शन से भाव में भी समता होती है।

卐 ॐ 卐

१५-२५७. निस्पृह आत्मा ही समता रूप अमृत के पान करने का अधिकारी है।

卐 ॐ 卐

१६-२५८. संसार में कौन तेरा है? फिर किसके लिये राग द्वेष के गड्ढों में गिरता रहना चाहता है? भाई! राग द्वेष के गड्ढों की बीच (तटस्थ-मध्यस्थ) जो समता की गली है उससे चलकर अपने स्वरूप गृह में शांति से रह।

卐 ॐ 卐

१७-२६३. आत्मा के स्वरूप को देखो। बाह्य में क्या रखा? बाह्य तो सब क्षणिक है, माया है, पर्याय है, आत्म स्वरूप की दृष्टि में सब प्राणी समान हैं, उस समानता को देखो और समता पावो।

卐 ॐ 卐

१८-२६४. जगत का ठीक स्वरूप समझो और अपना भी,

इस जगत धोखे से रागद्वेष हट ही जावेगा और समता उत्पन्न होगी।

卐 ॐ 卐

१९—८६५. समता ही तात्त्विक सुख है, समता से च्युत होने वाले...हाय! हाय!...कितनी भयानक कषाय की अटवी में भटक गये।

卐 ॐ 卐

६ निजाचार

१-३. प्रवचन के समय जो तुम श्रोतावों से कहते हो वह अपने से भी कह लिया करो।

卐 ॐ 卐

२-१३. एक क्षण भी स्वाध्याय, सत्समागम व ध्यान छोड़ना आपत्ति में पड़ना है अतः उन उपायों से अपने आचरणसुन्दर रहो।

卐 ॐ 卐

२-२५. एक तो यथा तथा चिन्तावों का भार मुझ पर था ही, पर लोक मुझे कुछ अच्छा कह देते यह भी बड़ा भार मुझ पर लदा हुआ है; हे नाथ! आपके स्मरण के प्रसाद से आपके ज्ञान में मेरा उन्नति पथ पर जाना देखा हो तब तो संतोष की बात है, क्योंकि उक्त विरुद्धता मिटाने के लिये अवनति पथ पर जाना बुरा है।

卐 ॐ 卐

४–४६. लेखक का लेख प्रायः पुस्तक में ही रहता, यदि हृदय में हो जाय तब शीघ्र उसका और उसके निमित्त से अनेकों का उद्धार हो जाये।

卐 ॐ 卐

५–२५३. अनादि संतति से चले आये कर्म के उदय के निमित्त से क्षुधा आदि वेदनायें व ज्वरादि आमय यद्यपि हो जाते हैं उन्हें यदि सहन नहीं कर सकता तो न्याय के अविरुद्ध प्रतिकार कर लो, पर प्रतिकार में आसक्त मत होओ और न उन आपदावों से अपना नाश मानो, अपने स्वरूप को सदैव लक्ष्य में रखो।

卐 ॐ 卐

६–२८१. जो कल्याण की बात चार भाइयों के सामने कहते हो वह यदि एकान्त में ध्यान का विषय हो जाय तब तो संतोष की बात है अन्यथा गुजारा करने में ही शुमार रहोगे।

卐 ॐ 卐

निम्नलिखित प्रत्येक आचार्योपदेश गंभीरता से और उनसे अपने लिये शिक्षा ग्रहण करो :—

७-३१३. (क) एकमेव हि तत्स्वाद्यं विपदामपदं पदम् ।
अपदान्येव भासन्ते पदान्यन्यानि यत्पुरः ॥
श्री अमृतचन्द्रसूरि ।

एक ज्ञानमात्र का ही स्वाद लेना चाहिये जो विपत्तियों का स्थान नहीं है, जिस पद के आगे अन्य पद अपद हो जाते हैं । तुम…"मैं ज्ञानमात्र हूं" इसका निरंतर चिन्तवन करो ।

卐 ॐ 卐

८-३१३. (ख) यद्यद्‌ा चरितं पूर्वं तत्तदज्ञान चेष्टितम् ।
उत्तरोत्तर विज्ञानाद्योगिनः प्रतिभासते ॥
श्री गुणभद्रसूरि ।

योगी को उत्तरोत्तरज्ञान से ऐसा प्रतिभास होता है कि जो जो मैंने पहिले चेष्टा की वह…वह सब अज्ञान में चेष्टा हुई । तुम अपने मन वचन काय की सब चेष्टावों को "ये अज्ञान में हो रही है" ऐसा मानते रहो ।

卐 ॐ 卐

९-३१३. (ग) जीविताशा धनाशा च येषां तेषां विधिर्विधिः ।
किं करोति विधिस्तेषां येषामाशा निराशता ॥
श्री गुणभद्रसूरि ।

जिन्हें जीने की और धन की आशा लगी हो उनको कर्म कर्म है परन्तु जिनके आशा के न होने की ही मात्र आशा हो उनका कर्म क्या कर सकता है ।

तुम यही सोचो 'मुझे कुछ नहीं चाहिये मैं ही अपने लिये सब कुछ हूं ।"

卐 ॐ 卐

१०–२१२. (घ) आत्मा ज्ञानं स्वय ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम् ।
परभावस्य कर्तायं मोहोऽयं व्यवहारिणम ।।
श्री गुणभद्रसूरि ।

आत्मा ज्ञान है और वह स्वयं ज्ञान है ज्ञान से अतिरिक्त आत्मा करता ही क्या ? आत्मा पर के भाव का कर्ता है ऐसा कहना व्यवहारी जनों का मोह ही है यथार्थ बात नहीं ।

तुम "जानने के सिवाय पर में कुछ भी नहीं कर रहे हो" ऐसा मानते रहो ।

卐 ॐ 卐

११ २१२. (च) भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः ।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य मम विज्ञस्य का स्पृह ।।
श्री पूज्यपाद ।

मैंने सभी पुद्गल मोह से बार बार भोगे और छोड़े अब जूंठे हुए की तरह उन भोगों में मुझ ज्ञानी को क्या इच्छा हो।

जो भी तुम्हें दिखता मिलता विचार में आता वह सब तुमने बार बार तो भोगे कुछ भी तो नहीं मिला उल्टा क्लेश ही तो बढ़ा अब "सब हटो मैं तो ज्ञानमात्र निजवैभव को ही भोगूंगा" ऐसा ही विचारो।

卐 ॐ 卐

१२–३१३. (छ) मामपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः।
मां प्रपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः॥
श्री पूज्यपाद।

मुझको नहीं देखता हुआ लोक मेरा शत्रु मित्र कैसे? मुझ को (ज्ञानमात्र आत्मा को) देखता हुआ लोक मेरा शत्रु और मित्र कैसे?

मेरा कोई भी प्राणी न शत्रु है न मित्र है, मेरी ही करतूत (कल्पना) शत्रु मित्र बनती है। ऐसा परिणाम रखो, यदि कल्पना ही उठे तो।

卐 ॐ 卐

१४–३१३ (ज) मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगंधि वीभत्सम्।
पश्यन्नंगमनंगाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः॥
श्री समंतभद्रसूरि।

मल से उत्पन्न हुए मल को उत्पन्न करने वाले तथा जिमसे मल झरता रहता है ऐसे अपवित्र दुर्गन्धित भयानक देह को देखता हुआ जो काम से विरक्त रहता है वह ब्रह्मचारी है।

किसी भी शरीर को देख कर यदि मनोज्ञपने का विकल्प हो तब शरीर की मलीनता सोचने लगो।

卐 ॐ 卐

१४-३१३. भ०) यदि पापनिरोधोन्यसंपदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापाश्रवोऽस्त्यन्यत्संपदा किं प्रयोजनम्॥

श्री समंतभद्र।

यदि पाप का अन्त समाप्त होगया तब अन्य संपत्ति से क्या प्रयोजन रहा और यदि पापों का आना रहा तब अन्य संपत्ति से क्या लाभ है? पाप का परिणाम न हो इस ही में सुख मानो।

卐 ॐ 卐

निम्नलिखित आचार्योपदेशों को अपने में घटाते हुए बतलाई हुई विधि का आचरण करो:—

१५-३२०. एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावा मत्ताः सर्वेऽपि सर्वथा॥

श्रीपूज्यपाद।

दुःखसंदोहभागित्वं संयोगादिह देहिनाम्।
त्यंजाम्येनं ततः सर्वं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥

श्री पूज्यपाद ।

卐 ॐ 卐

१६–३७०. मनोहर ! तुम अपने गुरु द्वारा प्राप्त इन उपदेशों को रचात्मक करने लगो तब गुरु का व अपना आदर किया यह समझूंगा ।

१–जिस त्याग में इतने विकल्प हों वह त्याग नहीं एक तरह की आत्मवञ्चना है, यह वञ्चित भाव मोहमद का नशा उतरे बिना नहीं जा सकता, कितने ही स्वांग धरो स्वांग तो स्वांग··नकल तो नकल ही है—मूर्ति में भगवान् की स्थापना कर के काम निकाल लो परन्तु दिव्यध्वनि नहीं खिरने लगेगी ।

२–निरपेक्षता ही परमधर्म है हम आपको यही उपादेय है ।

३–जो आताप आत्मस्थ है उसका प्रतीकार—पास होने पर भी—अभी दूर है, यह आताप जो बाह्य है उसका तो सरल उपाय है प्रायः सर्व ही उपचार कर देते हैं, जो आभ्यन्तर आताप है उसके अपहरण के लिये

किसी की अपेक्षा की आवश्यक्ता नहीं, पर की सहायता न चाहना ही इसका मूल उपाय है परन्तु हम लोग इसके विरुद्ध चलते हैं—यह महती भूल है।

४—अपनी परिणति को प्रसन्न रखो—अन्य प्रसन्न हों चाहे न हों।

५—शरीर की निरोगता पर उपेक्षा रखना आत्मसिद्धि की अवहेलना है विरताविरत अवस्था में विरत अवस्था का आचरण होना असंभव है।

६—गृहस्थों के चक्र में न पड़ना तथा निरपेक्ष त्यागी रहना—पत्थर पर सोना पर चटाई न मांगना—लंगोटी न मिले तब द्रव्यमुनि ही बन जाना पर लंगोटी न मांगना—सूखी रोटी मिल जावे पर घी की इच्छा न करना।

卐 ॐ 卐

१७—२६७. मनोहर ! जब तुमने ब्रह्मचर्यव्रत एवं देशव्रत धारण का विचार किया तब क्या लक्ष्य बनाया था अब बीच में कितने ही आये हुए लक्ष्यों को त्याग कर उसी अपूर्व पूर्व लक्ष्य पर आजावो किस के लिये हाथ पैर पीटते ? जगत धोका है क्षणिक है अन्यस्वभाव है तुम्हारो

प्रसन्नता (निर्मलता) में ही तुम्हारा कल्याण है।

卐 ॐ 卐

१८–४०८. मनोहर ! तुम अपने विषय में गृहविरत त्यागिजनों से ही सलाह लो और सलाह लेकर कुछ समय तक तुम स्वयं विचार करो, जो उत्तम पथ जचे–शक्ति न छुपा कर उस पथ पर चलो।

卐 ॐ 卐

१९–५३१. सुखी होना भी तेरे हाथ की बात है और दुखी होना भी तेरे हाथ की बात है अब तुझे जो भावे सो कर, परन्तु देख यदि यह नरभव संक्लेश में ही गमा दिया तो फिर तेरा कुछ ठिकाना न होगा।

卐 ॐ 卐

२०–५६८. सामायिक में इतनी बातें भी किया करो।

१–स्वभावसिद्धि के लिये हमने क्या उन्नति की? या अवनति की उसका हिसाब लगाना।

२–स्वभावसिद्धि का बाधक राग परिणाम है जो नैमित्तिक है, वह राग किसके निमित्त से हो रहा है उसी से बात करो—क्या हितकारी है? कब से साथ है? कब तक साथ रहेगा? आदि।

३–बुद्धिगत सब विचारोंको भुला कर स्वस्थ रहो।

卐 ॐ 卐

२१–६०४. मैं ने वाह्य द्रव्य के सुधारने विगाड़ने की धुन में अनेक चेष्टायें की किन्तु मैंने अपने लिये क्या किया? किये का उत्तर दो और इसे कई बार विचारो कि "इस समय अपने लिये क्या कर रहा हूं।

卐 ॐ 卐

२२–६०५. इसका भी विशेष विवरण के साथ उत्तर दो कि जो मेरी चेष्टा हो रही है वह मुझ ज्ञानस्वरूप आत्मा के लिये साधक है या बाधक?

卐 ॐ 卐

२३–६१०. क्या यह चेष्टा बंध करने वाली नहीं है? (विचारो)।

卐 ॐ 卐

२४–८२४ जैसे चावल ग्राह्य है परन्तु धान के चोने से छिलका हटाने पर वह प्राप्त होता है इसी प्रकार निश्चय तत्त्व आदेय है परन्तु आचार के पालने से आचरण में, आचरण से भिन्न ब्रह्मतत्त्व के समझने पर वह प्राप्त होता है। धान समेट कर भी छिलके पर किसी की

उपादेय बुद्धि नहीं रहती, निज के आचार के अर्थ ही बाह्य आचार है।

卐 ॐ 卐

२५-८२६. व्यवहार में दुखी को अनमना भी कहते हैं। अनमना का शुद्ध शब्द अन्यमनस्क है अर्थात् जिसका दूसरे में मन है उसे अनमना कहते हैं, यदि अनमना रहना बुरा समझते हो तो निजमना बन जावो, अनमनापन मिट जावेगा।

卐 ॐ 卐

२६-८४४. अपने आचरण को सुसंस्कृत बनाने से ही भविष्य उज्ज्वल रहता है अतः अपने आत्मस्वभावरूप आचरण करो।

卐 ॐ 卐

२७-८४६. अपने विचारों को पवित्र बनाये रखना निजस्वभाव के लक्ष्य से च्युत न होना निजाचार है।

卐 ॐ 卐

१० सुख

१–४०. सुख और शान्ति वैज्ञानिक खोज है निष्पक्ष होकर यदि कोई इस खोज का प्रयत्न करे तब शीघ्र सफल हो सकता, क्योंकि वह सुख शान्ति निज का गुण है निज में निज से प्रकट होता साधनान्तर की आवश्यकता नहीं ।

卐 ॐ 卐

२–६६. ज्ञानी को जैसे विपदा दुखी नहीं कर सकती उसी तरह संपदा भी सुखी नहीं करती उसका सुख तो साहजिक है ।

卐 ॐ 卐

३–१२२. अपने जीवन से भी मोह न करने वाला मनुष्य सत्य सुख का पात्र है ।

卐 ॐ 卐

४–१२५. कर्म के उदय में कर्म अकर्मत्वरूप ही होता है क्योंकि कर्म परमाणुवों के उदय के बाद भी उन्हें कर्म रूप बनाये रहने में कोई समर्थ नहीं, अतः सिद्ध है—

कि सांसारिक सुख भी अशरण कर्म के विनाश से आत्मा प्राप्त करता है तो जहां कर्म का सर्वथा अभाव है वहां तो आत्मा अनंत अनाकुल सुख का भण्डार है, इसमें संदेह का लेश नहीं।

卐 ॐ 卐

५-१६८. हे नाथ! मुझे अनन्त सुख मिले चाहे न मिले पर आकुलता का संताप तो मत होवे।

卐 ॐ 卐

६-२१६. किसी से कुछ नहीं चाहना ही सुख है और दूसरे से कोई आशा करना ही दुःख है।

卐 ॐ 卐

७-२२६. केवल ज्ञान ही रहना सत्य सुख है, ज्ञानरूप परिणमन में खेद नहीं, यह तो ज्ञान की सहज वृत्ति है, रागद्वेषादिरूप परिणमन में खेद है।

卐 ॐ 卐

८-२२२. जो निर्मोह और सर्वज्ञ हैं वही सर्वोत्कृष्ट अनंत सुखी हैं।

卐 ॐ 卐

६-२५२. तेरा सुख तुझ ही में है, और वह स्वाधीन है,

पर वस्तु से सुख की आशा मत करो।

卐 ॐ 卐

१०-२६७. हे आत्मन् ! तू आज ही सुखी हो जाय यदि इस विचार की दृढ़ता के लिये कमर कस लें—कि—मैं दूसरों का कोई नहीं और न मेरे कोई दूसरे हैं, मैं तो ज्ञानमात्र एकाकी हूं, पर का परिणमन जो हो सो हो, मैं तो अपने स्वभावरूप ही रहूंगा।

卐 ॐ 卐

११-२७७. तुम सुख से स्वयं परिपूर्ण हो, सुख के अर्थ पर की प्रतीक्षा करके सुख की हत्या मत करो।

卐 ॐ 卐

१२-३५८. विषय की चाह व कषाय की प्रवृत्ति जितनी कम होगी उतने ही सुखी रहोगे।

卐 ॐ 卐

१३-४४१. रागद्वेषरहित परिणति हुए विना शाश्वत स्वाधीन सुख नहीं मिल सकता तथा पर द्रव्य में आत्मबुद्धि रहते हुए रागद्वेषजन्य आकुलता नष्ट नहीं हो सकती, अतः हे आत्महितैषी ! अपनी जिद छोड़ और हित के मार्ग पर चल।

卐 ॐ 卐

१४–४४७. परमानन्द की प्राप्ति के अर्थ तो सब से चित हटाना ही होगा।

卐 ॐ 卐

१५–६८२ किसी भी आत्मा से मोह राग न करने वाला और पञ्चेन्द्रिय के विषयों में रुचि न करने वाला मनुष्य सत्य सुखी रह सकता है।

卐 ॐ 卐

१६–६६२ भाई मोह हटावो और सुखी होलो सुख का इससे अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

卐 ॐ 卐

१७–७१०. सदाचार ही सुख है, सदाचारी सहजानन्द की छाया में रह कर शान्त जीवन व्यतीत करता है तथा आत्मबली बनकर संसार के दुःखों से सदैव छूट जाता है।

卐 ॐ 卐

१८–७१४. सदाचार ही सुख का जनक है, जहां परिणामों में लेश विषमता आती हो यदि वहां के पदार्थों के कारण होती हो तो तत्काल उस स्थान को छोड़ देना चाहिये।

卐 ॐ 卐

१६-७२१. सुख, दुःख का अभाव है, दुःख रागमात्र है अतः राग का अभाव ही सुख है, जब राग का अभाव हुआ तब जो गुण है अपने रूप में रह गया। आत्मा में अनेक गुण हैं परन्तु सब का वेदन ज्ञानगुण द्वारा होता है अतः यह बात हुई जब ज्ञान को राग का वेदन न करना हुआ तब सुख ही है इसलिये केवल ज्ञान का सुख है अर्थात् "ज्ञान ही सुख है"।

卐 ॐ 卐

२०-७२२. अव्याबाध प्रतिजीवी गुण है, प्रतीत होता है कि व्याबाधा वेदनीय के उदय से थी, वेदनीय के क्षय से बाधा मिट गई वह अव्याबाध अभावात्मक प्रतिजीवी गुण हुआ। 'संसार सुख नियम से दुःख ही है' सर्व दुःखों का अभाव ही सुख है और वह सुख वेदनीय के क्षय होने पर होता है।

卐 ॐ 卐

११ आत्मशक्ति

१–७३५. आत्मन् ! तू अनन्त शक्तिमय है, बकरियों में पले हुए सिंह के बच्चे की तरह दीन क्यों बन रहा है ? सर्व परपदार्थ की तृष्णा तज और स्वतन्त्रता से अपने में विहार कर।

卐 ॐ 卐

२–७१२. भावों की निर्मलता ही आत्मबल है, यही सुख स्वरूप है।

卐 ॐ 卐

३–७०६. रागद्वेष बढ़ाना ही आत्मबल घटाना है और समता भाव करना ही आत्मबल बढ़ाना है, आत्मबली सुखी है, इस विनश्वर लोक में तेरा कौन साथी है ? कौन शरण है ? क्या सार है ? किसके लिये निज पवित्र ज्ञान दृष्टि से च्युत होकर परदृष्टिरूप विपरीत घोर एवं व्यर्थ परिश्रम करते हो ? शान्त होओ और अपने आप ही में रहो।

४–५१५. दीनता का कारण पर पदार्थ की आशा है, किसी भी वाह्य पदार्थ से आत्मा का हित नहीं होता, प्रत्येक जीव अनत शक्ति वाला है, परन्तु पर्यायबुद्धि होने से अपनी अनंतशक्ति का सदुपयोग नहीं करते, चेतो श्रेयोमार्ग यद्यपि दुष्कर मालूम होता परन्तु उसका विपाक मधुर ही मधुर है।

卐 ॐ 卐

५–५०४. हे ज्ञानघन ! तुम ज्ञेय पदार्थ जानने का क्यों परिश्रम करते हो ? ये ज्ञेय तो अवश होकर ज्ञान में प्रतिभासित होते क्योंकि ज्ञान और ज्ञेय का ऐसा ही स्वभाव है।

卐 ॐ 卐

६–१९९. हे अनंतबली ! मुझे अनन्तबल मिले मेरी ऐसी कोई टेक नहीं परन्तु इतने बल का तो अवश्य विकास हो जो मैं अपने में ठहरा रहूं।

卐 ॐ 卐

७–१७. मनोहर ! तुम पद पद पर यह विचार करने लगते कि मोह की शक्ति प्रबल है किन्तु तुम नहीं जानते ? आत्मज्ञान में वह अनन्त शक्ति है जिससे मोह क्षण में ध्वस्त हो जाता है और अनन्तकाल तक

यक होता जाता है। आत्मा की शुद्ध शक्ति को देख, ...सब झंझट निकल जावेगा।

卐 ॐ 卐

१०–८२३. आत्मा की शक्ति तो अचिन्त्य है परन्तु जैसे कोई ईंट से ही शिर मार कर अपना ही खून करता है इसी तरह मोही आत्मा बाह्य वैभव से ही शिर मार कर अपनी हत्या करता है।

卐 ॐ 卐

११–८२६. जिसे आत्मशक्ति पर विश्वास नहीं वह शांति का पात्र नहीं हो सकता।

卐 ॐ 卐

१२–८४६. अहंकार और ममकार को समाप्त करके सर्व प्राणियों के अन्दर चेतना भगवती शक्ति का दर्शन करने वाला पुरुष सत है।

卐 ॐ 卐

१२ तत्त्वदुर्लभता

१–७३७. सबसे दुर्लभ तो आत्मस्थिरता है उसके पाने पर फिर कोई भी स्थिति पाने योग्य नहीं रहती।

卐 ॐ 卐

२–७३६. आत्मन् ! तू ने इस समय जो साधन पाया—सोच तो सही—कितना दुर्लभ था—जो पा लिया, ससार के प्राणियों की ओर देख—कोई निगोद है कोई अन्य स्थावर है, कोई कीट मच्छर है, कोई नारकी, कोई पशु पक्षी है, कोई नीच है, गरीब है, अज्ञानी है, विषयी है, सत्य धर्म से विमुख है, परन्तु तुम तो इन सब गड्ढों को पार करके शांति तल पर आगये अब प्रमादी व कषायी होना योग्य नहीं। अन्यथा फिर गड्ढों में ही सड़ोगे।

卐 ॐ 卐

३–६७६. इस मनुष्यभव में न चेते तो फिर नरक तिर्यञ्च गति की भटकना, न जाने, कब तक रहती रहेगी, बड़े

खेद की बात है जो श्रेष्ठ मन पा कर भी सदुपयोग न करें।

卐 ॐ 卐

४–६०८. अन्य भवों में किये हुए पाप मनुष्य भव में धोये (नष्ट किये) जा सकते हैं, यदि मनुष्य भव में ही पाप किये जावें तो उनका विनाश फिर कहां हो? यह मनुष्य भव दुर्लभ है इसलिये मनुष्य भव को पाकर पापों के नाश करने में आत्मधर्म के पालन व वर्द्धन में ही उपयोग करो।

卐 ॐ 卐

५–४५५. इस लोक में बड़प्पन सँभाला तो क्या हुआ? बड़प्पन तो वही है जिसके बाद अवनति न हो, यदि परमार्थवृत्ति न रखी तब ढकोसला अधिक से अधिक इस जीवन तक ही चल सकता, मृत्यु बाद तो नियम से खोटी दशा होगी।

卐 ॐ 卐

६–२७५. मनोहर! यह मनुष्यत्व अति दुर्लभ है चिन्ता ग्रस्त रह कर जीवन व्यर्थ मत खोओ।

卐 ॐ 卐

७–१६६. मरण तो समाधिमरण होता किन्तु जन्म समाधिजन्म नहीं होता, आयुक्षय के अनंतर तो मुक्ति होती परन्तु आयु के उदय में मुक्ति नहीं होती।

卐 ॐ 卐

८–१३१. आहार भय मैथुन परिग्रह चार संज्ञा रूपी ज्वर से पीड़ित संसारी जन को दुर्लभ जिनोपदेश कटु, विपाकमधुर औषधि है, इसे नेत्र बंद करके कर्णपात्र से पी लेना चाहिये।

卐 ॐ 卐

९–३९. खेद है—कि दुर्लभ मनुष्य जन्म सत्कुल आदि पाकर भी प्राणी विस्तृत मत मतान्तरों के संदोह के संदेह में शिवपथ का निर्णय व अनुसरण नहीं कर पाता। हाँ ऐसे झूले के अवसर में सब बातों को छोड़कर यदि खुद का निरीक्षण करे तो शान्ति पथ दिख भी सकता है।

卐 ॐ 卐

१८–७९३. काम, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकारों से रहित आत्मा की सहज स्थिति पाना ही अमूल्य वैभव है। इसका ही लक्ष्य रखो।

卐 ॐ 卐

१२ पवित्रता

१-४१. पापोदयी पापात्मा भी बन सकता व पुण्यात्मा (पवित्र आत्मा) भी बन सकता, पापोदय में हानि नहीं किन्तु पापात्मा हो जाने में निज गुण की हानि है।

卐 ॐ 卐

२-४२. पुण्योदयी पुण्यात्मा भी हो सकता और पापात्मा भी बन सकता, पुण्योदय में लाभ नहीं, पुण्यात्मा बनने में लाभ है।

卐 ॐ 卐

३-५६. ब्रह्मचर्य की सिद्धि के लिये स्त्रियों को जननी के शक्ल में निरखो (उनमें अपने माता के रूप की स्थापना करो)।

卐 ॐ 卐

४-५७. मनोविकार पाप है, कायकृत पाप के बाद मनःकृत पाप को हटाने के प्रयत्न में चिन्ता का अवसर नहीं मिलता अतः कायकृत पाप मनःकृत पाप से अधिक

कहा है, यदि कोई कायकृत पाप न करके भी मनोविकार को न हटावे या हटाने का प्रयत्न न करे तब वह अधम ही है।

卐 ॐ 卐

५–५८. व्रत लेने के बाद यदि पूर्ववत् विकार रहा तब समझो कि हम वहीं के वहीं हैं, कोई उन्नति नहीं हुई।

卐 ॐ 卐

६–७५. ब्रह्मचर्य की रक्षा में मनोविकार के दूर करने में उपवास परम सहायक होता है, उपवास शक्ति के अनुसार करना चाहिये, शक्ति से बाहर करने पर संक्लेश का निमित्त भी बन सकता है।

卐 ॐ 卐

७–१३०. जिसने पोता के पोता को देख लिया है उसे लोग पुण्यात्मा कहते हैं और मर जाने पर सोने की सीढ़ी चिता पर रखते, परन्तु यह नहीं जानते कि उसने तो लड़के का मोह करके व पोता का व पोता के लड़के का व पोता के पोता का मोह कर ५ पीढ़ी का मोह कलंक बसा कर अधिक पाप कमाया है, निर्मोही तो स्वयं पुण्यात्मा है वह धन संतान परिवार के कारण पुण्यात्मा नहीं है।

卐 ॐ 卐

८–१७५. रे विधि ! मेरे साथ रहने में तो तेरी शुद्धि की संभावना भी नहीं, साथ छोड़ने के बाद तू शुद्धावस्थ भी हो सकता है, अतः हम तुम दोनों की शुद्धि के लिये सम्बन्ध छूटना आवश्यक है इसलिये मेरा साथ छोड़ ताकि मैं फिरूं नहीं और तेरी विकृतावस्था मेरे निमित्त से होवे नहीं।

卐 ॐ 卐

९–२२३. रे आत्मन् ! तू जो कर चुका व कर रहा व करेगा उन बातों को अनन्त परमात्मा स्पष्ट जानते हैं तू यह मत सोच कि कोई जानने वाला नहीं, यहां तो बात खुलने पर दो चार सौ आदमी ही जानते पर वहां तो अनन्त परमात्मा जान रहे हैं तथा उन चेष्टावों का फल भी तू नियम से पावेगा, अतः अपनी पवित्रता की रक्षा कर।

卐 ॐ 卐

१०–२४०. प्रसन्नता का अर्थ निर्मलता है, निर्मलता ही सत्यसुख है, परन्तु लौकिक जन इस रहस्य को नहीं समझते तभी तो उन्होंने काल्पनिक इन्द्रियजन्य सुख या खुशी को ही प्रसन्नता कह डाला।

卐 ॐ 卐

११–३५५. ब्रह्मचर्य लेने पर भी जो मानसशुद्धिहानि होती है उसके निराकरण के अर्थ ऐसा भी चिन्तवन करो— इस पद में अन्यथा बात तो हो ही नहीं सकती और तुम्हें भी अतिक्रम अनिष्ट है उसे हृदय से चाहते भी नहीं फिर क्यों ऊपरी और थोथी कल्पनावों से अपने विकास को रोके हो, इसमें तो तुम्हारी वह दशा है जो न इस पार के रहे न उस पार के, अतः असत्कल्पना का त्यागो अथवा अशुचि भावना का चिन्तवन करो।

卐 ॐ 卐

१२–३८३. ब्रह्मचर्य परमतप है और शुद्धात्मभक्ति परमकार्य है, अपने जीवन में शील और भक्ति का प्रसार कर पवित्र बनो और अलौकिक सुख प्राप्त करो।

卐 ॐ 卐

१३–४०७. विविध तपस्या के लाभ यह हैं—ब्रह्मचर्यपुष्टि, देहशुद्धि, परिचयविनाश, निजात्मकार्य की उत्सुकता, ध्यान, रागहानि धीरता, सद्विचार, आशाक्षय, इन्द्रिय-विजय, प्राणिरक्षा।

卐 ॐ 卐

१४–४१३. जब शरीरनिष्पत्ति में मूलनिमित्त आत्मपरिणाम है तब क्या शरीर की नीरोगता में मूलनिमित्त आत्म परि-

णाम नहीं है ? अवश्य है, अतः मनोहर ! शरीर को नीरोग करने के लिये अब औषधि और उपचार से दृष्टि हटा कर अपने परिणाम की निर्मलता रूप औषधि व उपचार का सेवन करो।

卐 ॐ 卐

१७–४७०. सर्वज्ञ व क्रमबद्ध पर्याय पर विश्वास न रखने वालों का मन बेलगाम दौड़ लगाता ही रहता है जिससे मलीनता बढ़ती ही जाती, यहां एक शंका हो सकती है फिर प्रमादी हो जाने से व्यवहार बंद हो जायगा इसका उत्तर यह है—कि तत्त्वश्रद्धालु होने पर भी उसके जो राग का उदय है वह व्यवहार बनाये रहता अथवा तुझे व्यवहार की क्या पड़ी ? आत्ममग्न होकर पूर्ण पवित्र बन और दुःख से छुटकारा पा।

卐 ॐ 卐

१६–५६०. काम एक महान् अन्धकार है जिसमें हितमार्ग तो सूझता ही नहीं, काम एक महती ज्वाला है जिसमें आत्मा भुनता रहता है और काम की करतूत है क्या ? खून हाड़ मास वाले चाम से अनुराग करना और अपना वीर्य पात कर अपनी शक्ति खोना और आपदाओं का

शिकार बनना, अतः सुख चाहने वालो ! पवित्रज्ञान मय शरीर ही अपना समझकर ज्ञानपरिणति में ही आदर करो और आत्मबली बनो ।

卐 ॐ 卐

१७-६११. रागद्वेष का उदय हुआ उसमें हम बह गये, हमने अपनी क्या दया की (विचारो)।

卐 ॐ 卐

१८-७११. उत्तम ब्रह्मचर्य पालन करने वाले तथा अन्तरंग से विरक्त पुरुष के शहर का निवास छूट जाता है, इस काल में भी विशेष गर्मी सर्दी आदि बाधा के अभाव में शहर के बाहर ही निवास होना चाहिये ।

卐 ॐ 卐

१९-२०. मन को पवित्र बनाये रहना व जिन उपायों से पवित्रता बनी रहे उन उपायों को करना मनुष्यजन्म का फल या सार्थक्य है और व्यवहार सुखों में सर्वोपरि सुख है ।

卐 ॐ 卐

२०-८२७. अन्तरंग की पवित्रता के बिना बाह्य पवित्रता से आत्मा शान्त नहीं हो सकता अतः चाहे आपदा आवे

या संपदा, चित्त की निर्मलता ही उत्तम कार्य है।

卐 ॐ 卐

२१–८३०. कषायरूप मल को दूर हटाकर अपने को पवित्र बनाओ, जगत में तुम पर का कर ही क्या सकते ?

卐 ॐ 卐

२२–८४७. पवित्रता बाह्यवस्तु से नहीं आती किन्तु अपवित्रता का जो कारण है उसे हटाने से आती, कषाय (मोह रागद्वेष) को हटाने से आत्मा पवित्र होगा तथा अपवित्रता से परिपूर्ण इस शरीर का वियोग होकर सदा पवित्रता हो जायगी।

卐 ॐ 卐
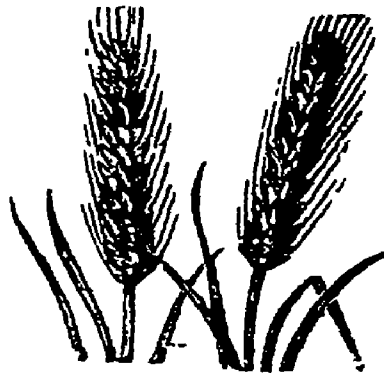
१४ अकर्तृत्व

१–२०. मैं इन जीवों का पालक, रक्षक या उपदेशक हूं यह अहंकार व्यर्थ है यदि कल्पना ही उठे तो ऐसी कल्पना हो कि इनके पुण्योदय से या भवितव्य से इनके पालन, रक्षा के लिये या ज्ञान के विकास के लिये मैं सेवक या निमित्त बन रहा हूं।

卐 ॐ 卐

२–३२. पुण्य के उदय में मग्न मत होओ और न पुण्य की इच्छा से पुण्य करो तथा गर्व या अहंकार में आकर पाप मत करो केवल ज्ञायक रहो।

卐 ॐ 卐

३–३३. पाप के उदय में विषादी मत होओ और न विषाद से बचने के लिये पाप करो तथा विपदा से बचने की इच्छा से लोभी होकर पुण्य भी मत करो, जिस अवस्था में हो उसी अवस्था में परमात्मा या निज शुद्धात्मा का ध्यान करके केवल ज्ञायक रहो और स्वयं पुण्य बन

जावे।

卐 ॐ 卐

४–३४. स्वयं पुण्य बनते हुए भी जब तक गति नाम का उदय है तब तक पुण्य का बंध या उदय सत्त्व रहेगा हो परन्तु तुम उसकी इच्छा न करो, पुण्य की इच्छा भी पाप की एक जाति है।

卐 ॐ 卐

५–६३. रागद्वेष मोह का निमित्त—आश्रय—आधार—विषय पर पदार्थ है, यदि किसी से कहा जाय कि तुम रागद्वेष मोह करो किन्तु शुद्धात्मा के सिवाय अन्य पदार्थ में मत करो तो वह कर ही कैसे सकता है ?

卐 ॐ 卐

६–६४. अपने परिणाम से अन्य जीव का दुःख, सुख, बंधन, मोक्ष आदि रूप परिणमन नहीं होता, वह तो उन्हीं के सराग वीतराग परिणाम से होता अतः यह अहङ्कार मिथ्या है जो मैंने दूसरे को दुखी किया, सुखी किया, बांधा, छुड़ाया आदि।

卐 ॐ 卐

७–१५४. जगत् में एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता नहीं. एक परमाणु दूसरे परमाणु का कर्ता नहीं। किसी

के परिणमन के निमित्त से किसी का परिणमन होना निमित्तनैमित्तिक भाव का फल है, वह तो हो ही रहा था, हो ही रहा है, होता ही रहेगा, तुम पर द्रव्य में कर्तृत्वबुद्धि करके संसारी दुःखी न बनो।

卐 ॐ 卐

८–१५६. यदि कल्पनायें ही उठें तो उठने दो पर उन्हें कल्पना तो जानो और उसका ही कंथचित् कर्ता मानो और फिर भेदविज्ञान से अस्त कर दो किन्तु कल्पना के आश्रय पर द्रव्य में कर्तृत्वबुद्धि कभी मत करो।

卐 ॐ 卐

९–१५७. मनोहर! पर पदार्थ की अवस्था करने का भार तुम अपने ज्ञान में लेकर दुखी क्यों होते हो? परमात्मा प्रभु के ज्ञान में ही यह सब (पदार्थ की अवस्था होने का) भार रहने दो। वह अनंत शक्तिमान् है इस भार से प्रभु का बाल बांका नहीं हो सकता अर्थात् वह त्रिलोक व त्रिकालवर्ती गुणपर्यायों को जानता हुआ भी अनन्तकाल तक स्वरूप से च्युत नहीं हो सकता, जो कुछ होना है वह सर्वज्ञ देव जानते हैं अतः जो प्रभु जानते हैं वही होगा तुम परचिन्ता करके आकुल मत होओ।

卐 ॐ 卐

१०-१७६. "स्वतंत्रः कर्ता" इस नियम से रागद्वेष परिणाम का कर्ता आत्मा नहीं किन्तु रागद्वेष परिणाम के ज्ञान का कर्ता आत्मा है।

卐 ॐ 卐

११-२४८. क्रमबद्ध पर्याय पर विश्वास रखकर बुद्धिपूर्वक कुछ न करने का महान् पुरुषार्थ करो।

卐 ॐ 卐

१२-२६६. पर पदार्थ का परिणमन तेरे आधीन नहीं, व्यर्थ ही तू अज्ञानवश पर के निमित्त विकल्पक बन कर आकुलित हो रहा है।

卐 ॐ 卐

१३-२७८. ऐसा कभी मत सोचो कि मैंने अमुक पदार्थ को अब तक ऐसा बनाया, अब कैसे छोड़ूं? तू न पर का कर्ता था, न है, न होगा। उनका ऐसा ही परिणमन होना था होगया, तू तो केवल उनका आश्रयमात्र था।

卐 ॐ 卐

१४-२६५. तुम अपने रागादि परिणाम के ही कर्ता भोक्ता हो सकते किन्तु किसी पर पदार्थ के कर्ता भोक्ता नहीं हो सकते।

卐 ॐ 卐

१५-२७७. "मैं यदि कुछ कर सकता हूं तो अपने उपयोग का परिणमन ही कर सकता हूं" इस बात को बार बार सोचो।

卐 ॐ 卐

१६-२८६. तुम्हारे द्वारा यदि दूसरों को लाभ होता हो उस में उनका भविष्य व सौभाग्य अन्तरङ्ग कारण समझो, अहसानों का भाव मत रखो।

卐 ॐ 卐

१७-२८७ तुम्हें भी जो लाभ होता है उसमें अपना अन्तराय का क्षयोपशम अन्तरङ्ग कारण समझो। किसी का अहसान मानते हुए अपना भाव दैन्य मत बनाओ।

卐 ॐ 卐

१८-२८८. आत्मन्! तुम कृतकृत्य हो क्यों कि तुम किसी पर पदार्थ के कर्ता नहीं हो वे स्वयंक्रियानिष्पन्न हैं अत एव तुम पर का कर ही क्या सकते? फलतः—पर में कुछ करना तो शेष है ही नहीं और पर से कर्तृत्वबुद्धि का अभाव होगया तब यही करने योग्य चीज थी सो यदि कर लिया तो कृतकृत्यता का आंशिक विकास ही तो हुआ, जो होना है होगा विकल्प मत करो।

卐 ॐ 卐

१६–४१२. तुमने जो कुछ किया अपनी शान्ति के अर्थ रागमय चेष्टा की जो शान्ति के विपरीत थी,...पर द्रव्य का तुम कर ही क्या सकते थे ? अतः कर्तृत्वबुद्धि को छोड़ और अब मैंने अमुक कार्य किया ऐसा सोचने के एवज में यह सोचो "मैंने यह अज्ञानमय चेष्टा की" ।

卐 ॐ 卐

२०–४४४. कौन किसका उपकार करता है ? केवल अपनी वेदना मेटने का ही सब प्रयत्न करते हैं अर्थात् जब राग की वेदना नहीं सही जाती तब कमजोरी के कारण बाह्य में चेष्टा करना पड़ती है ।

卐 ॐ 卐

२१–४७६. जो लोग यश या प्रशंसा गाते हैं वे स्वयं की कषाय का प्रतीकार करते हैं, तुम्हारा कुछ नहीं करते हैं, झूठमूठ कर्तृत्वबुद्धि करके फूलना मूढ़ों का कार्य है ।

卐 ॐ 卐

२२–४७७. जो लोग अपवाद या निन्दा करते हैं वे स्वयं की कषाय का प्रतीकार करते हैं, तुम्हारा कुछ नहीं करते, झूठमूठ उन्हें अपना विकर्ता मान कर दुखी होना मूढ़ों का कार्य है ।

卐 ॐ 卐

२३-५५१ संसारी सर्व जीव के क्रोध मान भय आदि होता है, कोई बनाकर क्रोधादि नहीं करता, अतः ये कषाय होते हैं, कोई करते नहीं है (यह एक दृष्टि है) अतः जो ये होते हैं वे तेरी असावधानी से। आत्मस्वरूप को सँभालो। कषाय तो तुम बनाकर करते ही नहीं, होने को और रोक दो फिर तू कृतकृत्य है।

卐 ॐ 卐

२४-६१५. पर पदार्थ के सुधार बिगाड़ करने के लिये हठ पकड़ जाने के बराबर मूर्खता और कोई नहीं है; सारे क्लेश इस हठ से उत्पन्न होते हैं। आत्मशुद्धि पर अधिक लक्ष्य करो, तुम्हारे क्षमादि भाव ही तुम्हारे रक्षक हैं और कोई रक्षा करने वाले नहीं हैं।

卐 ॐ 卐

२५-६१८. ज्ञान होता है इतना ही तो कर्तापन है और ज्ञान होता है इतना ही भोक्तापन है क्योंकि ज्ञान के सिवाय आत्मा किसे करता और किसे भोगता है? संसार अवस्था में जो सुख दुख होते हैं वे भी ज्ञान के ही मार्फत अपना सर्वस्व भेंट कर पाते हैं, अतः सुनिश्चित हुआ कि मैंने ज्ञान के सिवाय न कुछ किया, न कुछ भोगा, न कुछ कर रहा हूं, न कुछ भोग रहा हूं, न कुछ कर ही सकूंगा,

न कुछ भोग ही सकूंगा, इसलिये पर की चिन्ता करना उन्मत्तचेष्टा है।

卐 ॐ 卐

२६–६२२. लौकिक जनों से, कार्यों से, उपकारों से, दृष्टि हटाने वालों को कोई जन कह देते हैं कि यह तो स्वार्थ बुद्धि है, निर्दयता है, कायरता है, परन्तु सोचो तो सही ये पर का काम ही क्या कर रहे थे, जब भी ज्ञान में परिणमते थे अब भी परिणमते हैं जो करते थे सो ही अब कर रहे हैं, केवल भ्रम ही मिटा लिया।

卐 ॐ 卐
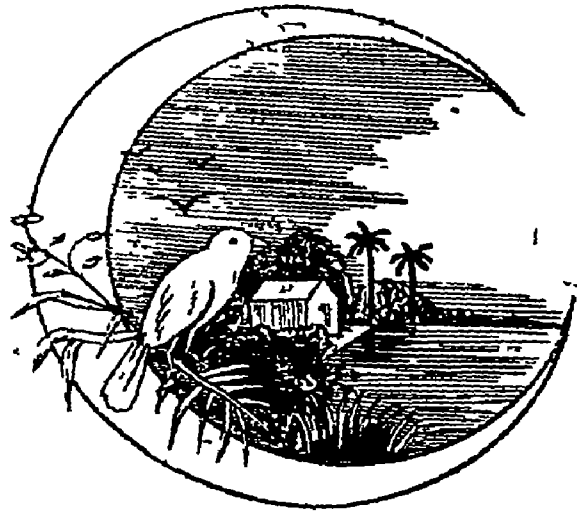
१५ दुःख

१–२२. दुःख का कारण व दुःख का आत्मा व दुःख का कार्य मोह, राग और द्वेष है।

卐 ॐ 卐

२–५०. योग्यता से बाहर का काम और अनधिकार चेष्टा स्वयं विपदा है।

卐 ॐ 卐

३–८८. पर पदार्थ में आत्मबुद्धि होना दुःख है और आत्मा में आत्म बुद्धि होना सुख है।

卐 ॐ 卐

४–२१५. स्वकल्याण की तड़फड़ाहट भी दुःख ही पहुंचाती, अतः घबड़ाहट के बिना अपना कर्तव्य पालन करना श्रेयस्कर है।

卐 ॐ 卐

५–२१६. स्वकल्याण की भी तड़फड़ाहट तथा अन्य दुःखमय विकल्पों को हटाने के लिये इस पद्य का चिन्तवन करो "जो जो देखी वीतराग ने सो सो होसी वीरा रे।

अनहोनी नहिं होसी कबहूं काहे होत अधीरा रे ॥"
यदि इस पद्य का दुरुपयोग करके स्वच्छंद बनोगे तब
तो श्रद्धा से भी दूर होगये; ज्ञानमात्र आत्मा का लक्ष्य
रखना तुम्हारा कर्तव्य है।

卐 ॐ 卐

६-२६६. मोही आत्मा अपने राग परिणाम से ही दुःख का
वेदन करता है, किसी को दुखी करने वाला कोई अन्य
नहीं है।

卐 ॐ 卐

७-३२६. विपत्ति और दुःख की अवस्था में अपने अपराध
पर दृष्टि डालो, पर में कुछ अन्वेषण मत करो। अपने
अपराध के समझने पर आकुलता व अशान्ति अवश्य
हतबला हो जायगी।

卐 ॐ 卐

८-३२७. सन्मार्ग पर चलते हुए व सद्व्यवहार करते हुए
भी यदि किसी के निमित्त से आपत्ति आजावे तब भी
अपना अपराध सोचो। तात्कालिक अपराध न होने पर
भी यह अपराध तो सोचा जा सकता है—जो मैंने पूर्व
ऐसा कर्म उपार्जित किया जिसके उदय से सन्मार्ग व सद्-
व्यवहार का सेवन करते हुए भी आपत्ति उपालंभ आदि
का लक्ष्य बनना पड़ रहा है—, ऐसा सोचने से पर के

प्रति दुर्भावना नहीं रहती।

卐 ॐ 卐

९–४०३. सांसारिक सुख, दुःख देकर नष्ट होता है और दुःख, सुख देकर नष्ट होजाता है, अतः दुःख देकर नष्ट होने वाले का राग छोड़ो और सुख देकर नष्ट होने वाले (दुःख) में भय और अरति मत करो क्योंकि दुःख देकर नष्ट होने वाले सुख से सुख देकर नष्ट होने वाला दुःख कहीं श्रेष्ठ है।

卐 ॐ 卐

१०–४३८. दुखी किस बात पर होना चाहिये ?— जब पाप परिणाम पैदा हो तब इस बात पर दुखी होना चाहिये- कि यह पाप परिणाम क्यों पैदा होता है, क्योंकि यही पापपरिणाम दुःख का मूल है। सम्पदा, विपदा, इष्टवियोग, रोग आदि में क्या दुखी होना, वह सब तो कर्म की निर्जरा के अर्थ है।

卐 ॐ 卐

११–५०१. परेशानी ! परेशानी !!···कल्पित लाभ में बाधा आना मात्र ही परेशानी है, परेशानी वास्तविक वस्तु नहीं है।

卐 ॐ 卐

१२–५५२. गरीब तो पैसा बिना दुःखी हैं और धनी तृष्णा

से दुखी हैं तथैव मूर्ख ज्ञान बिना दुखी हैं और शास्त्र-ज्ञानी तृष्णा से दुखी हैं, अयशस्वी पूछताँछ बिना दुखी हैं और यशस्वी लोकैषणा से दुखी हैं, अपुत्र पुत्र बिना दुखी हैं और पुत्र वाले पुत्र सेवा से दुखी हैं या मोह से या पुत्र दुःख से या अनिष्टभय से दुखी हैं, अमनस्वी दैन्यभाव से दुखी हैं और मनस्वी मान या मानभंग से दुखी हैं, भोले ठगे जाने से दुखी हैं और ठगिया संक्लेश भाव व अनिष्ट शका से दुखी हैं, इसलिये— दाम बिना निर्धन दुखी तृष्णावश धनवान। कहूं न सुख संसार में सब जग देख्यो छान॥ इस दोहे को देशामर्षक समझो अर्थात् अनेकविधदुःखमय संसार है, परन्तु सर्व दुःख आत्मज्ञान से दूर हो सकते हैं।

卐 ॐ 卐

१३—६२८. इस असार परिवर्तनशील संसार में प्रतिष्ठा का व्यामोह करना घोर दुःखों का कारण है।

卐 ॐ 卐

१४—६४५. संपत्ति और विपत्ति, प्रशंसा और निन्दा आकुलता उत्पन्न करने वाले हैं।

卐 ॐ 卐

१५–६४६. संपत्ति पाकर तृष्णा से, व्यवस्था से, भय से सदैव आकुलित होना पड़ता है।

卐 ॐ 卐

१६–६४७. विपत्ति में घबड़ाकर दुःखी बना रहता है।

卐 ॐ 卐

१७–६४८. प्रशंसा में अपने स्वरूप को भूल कर व प्रशंसा करने वालों के अनुकूल वृत्ति बनाकर व कष्ट उठाकर व्याकुल बनना पड़ता है।

卐 ॐ 卐

१८–६४९. निन्दा में अपनी हानि समझकर लोकलाज से संक्लिष्ट बना रहता है।

卐 ॐ 卐

१९–६५०. संपत्ति और प्रशंसा का कारण पुण्योदय है, विपत्ति और निन्दा का कारण पापोदय है। पाप पुण्य दोनों आकुलता के जनक हैं, एक शुद्धावस्था (ज्ञानमात्र की दशा) ही शान्तिमय है।

卐 ॐ 卐

१६ विषय सेवा

१–६५. भोगासक्त मनुष्य सप्तम नरक के नारकी से भी पतित है, नारकी तो सम्यक्त्व उत्पन्न कर सकता परन्तु भोगासक्त मनुष्य नहीं।

卐 ॐ 卐

२–८०. प्रभो! जब मैं विषयों के साधक पदार्थ में मग्न होऊँ तब मेरे विपदाकारक किन्तु दुर्भावविरुद्ध पाप का उदय आजावे जिससे मैं विपदा में फँसकर आपका स्मरण करता हुआ दुर्ध्यान से बच जाऊं।

卐 ॐ 卐

३–८१. केवल दूसरे का अनिष्ट विचारना या करना पाप व अशुभोपयोग नहीं है। अर्थात् वह तो है ही, किन्तु विषयसाधन में मग्न होना भी पाप व अशुभोपयोग है।

卐 ॐ 卐

४–२३२. उपभोग तो निर्जरा के लिये ही होता क्योंकि कर्म के वियुक्त हो रहे बिना या सविपाक निर्जरा हुए बिना या उदय आये बिना, उपभोग नहीं होता परन्तु उपभोग के

काल में मिथ्यादृष्टि के रागभाव का सद्भाव होने से अनंतकर्म का बंध होता।

卐 ॐ 卐

५-२३३. जो बड़भागी ज्ञानबल से उपभोग में राग न करे तो उस का उपभोग निर्जरा ही कराता है।

卐 ॐ 卐

६-२६१. दूसरों को दुखी करने के परिणाम से पाप होता व सुखी करने के परिणाम से कदाचित् पुण्य होता परन्तु विषयसाधन के परिणाम से पाप ही होता चाहे विषयसाधन में दूसरों को सुख हो या दुःख हो।

卐 ॐ 卐

७-४८६. जिस शरीर के कारण इन्द्रियविषयमुग्ध बनकर तुमने अपना घात ही किया, अपवित्रता ही बढ़ाई, उस शरीर में अब इष्ट बुद्धि क्यों रखते ?...शरीर रोगी रहे तो क्या या तपस्या से शीर्ण या तप्त हो तो क्या, तुम्हें तो इस शरीर को पृथक् ही समझकर अपने में स्थिर रहना चाहिये।

卐 ॐ 卐

८-६५१. ज्ञानी पुरुष भी विषयकषाय के वश हो कर कायर ही है, कायर पुरुष शस्त्रधारी भी होय तो भी वैरी का

घात नहीं कर सकता, इसी प्रकार विषयकषायी के बहुत ज्ञान भी होय तो भी वह दुर्गति का दुःख नष्ट नहीं कर सकता।

卐 ॐ 卐

९–६५२. किसी के ज्ञान भी अधिक होय, यदि वह विषय-कषाय कर मिला होय तो आत्मा का घात ही करता है। जैसे—सुन्दर आहार भी विष मिला होय तो प्राण का घात ही करता है।

卐 ॐ 卐

१०–६५३. कायर पुरुष के हाथ में शस्त्र हो तो वही शस्त्र उसी के मरण का कारण बन जाता है, इसी तरह विषय-कषाय वाले के यदि ज्ञान हो तो वह मलीन ज्ञान भी उसी आत्मा के क्लेश का कारण रहा करता है।

卐 ॐ 卐

११–६५४. मृतक मनुष्य के हाथ में शस्त्र भी हो तो भी गृद्ध आदि पक्षी उसे चूटते ही हैं इसी तरह ज्ञानी भी हो और विषयकषाय में लीन हो तो उसकी निन्दा ही होती है, उसका फिर कोई मुलाहजा करने वाला नहीं रहता।

卐 ॐ 卐

१२-६५५. जिस पक्षी के पंख कट गये वह पक्षी उड़ने की भी

चाहे करे तो क्या उड़ सकता है ? इसी तरह जिसका हृदय पवित्रता से रहित होगया अर्थात् विषयकषाय से मलीन होगया वह ज्ञान वाला भी हो, यदि दुःख सागर संसार से तिरना चाहे तो भी क्या तिर सकता है ? नहीं, वह तो उसमें डूबा ही रहेगा।

卐 ॐ 卐

१३-६५६. चंदन का भार गधे पर लदा है, उस चंदन की सुगंध गधा नहीं ले सकता, आस पास रहने वाले मनुष्य उसकी सुगंध लेते हैं, इसी प्रकार विषयकषाय वाले मनुष्य के ज्ञान भी हो तो भी उस ज्ञान से उसे कोई लाभ नहीं है; उस ज्ञान से चाहे और मनुष्य लाभ ले ले किन्तु उसका कुछ हित नहीं हो पाता।

卐 ॐ 卐

१४-६५७. जैसे अंधे के हाथ में दीपक हो तो उस दीपक से अंधे को क्या लाभ मिलता, इसी तरह विषयकषाय में लीन पुरुष के ज्ञान भी अच्छा हो तो उस ज्ञान से विषय कषाय वाले पुरुष को कोई लाभ नहीं है।

卐 ॐ 卐

१५-६५८. विषय कषाय में लीन पुरुष ज्ञान की कला से सुन्दर भी जचें तो भी वे अन्तरङ्ग में मलीन होने से

स्वयं स्वयं के लिये अहित है, वे पुरुष घोड़े की लीद के समान ऊपर से सुन्दर और भीतर से असुन्दर, शल्य, आकुलता व मलीनता से सहित हैं।

卐 ॐ 卐

१६-६६१. महान् ज्ञानसम्पादन करके भी विषयकषाय के वश दीनवृत्ति बनाये तब मुकुट आदि आभूषणों से भूषित होकर भी मांगते फिरने वाले की तरह निन्द्य हैं।

卐 ॐ 卐

१७-६८४. आकुलता के कारण विषयों में प्रवृत्ति होती है, प्रवृत्ति के समय भी आकुलता बनी रहती है, प्रवृत्ति के बाद भी आकुलतायें रहा करती हैं, अतः विषय सम्बन्ध सब ओर से आकुलतापूर्ण ही है।

卐 ॐ 卐

१७ भ्रम

१-२४. तुम अपने स्वरूप को ही जानते और इसी कारण स्वरूप में जो पर पदार्थ का प्रतिभास है उसे भी जानते, किन्तु इन्द्रियों के द्वारा जानने के कारण बाह्यदृष्टि की दशा में यह भ्रम होगया कि मैं एकदम सीधा पदार्थों को जानता हूँ।

卐 ॐ 卐

२-२७. सुख अपने ज्ञान का आता, परन्तु जैसे सूखी हड्डी चबाने वाले कुत्ते को स्वाद तो अपने मुँह से निकलते हुए खून का आता पर मानता हड्डी का स्वाद। इसी तरह मोही भी पर पदार्थ का सुख मानता··होता स्वय का है।

卐 ॐ 卐

३-८२. इनका मुझ पर बड़ा स्नेह है यह सोचना भ्रम है, यदि परीक्षा करना हो तो उनके प्रतिकूल होकर देख लीजिये।

卐 ॐ 卐

४–१००. हम किसी भी पर पदार्थ में नहीं ठहरे और न किसी की परिणति से मेरी परिणति होती, परन्तु पर में ठहरा या पर परिणति से अपनी परिणति होती ये दोनों बातें मानने (भ्रान्तबुद्धि) में ही हैं। जिनके यह भ्रम है वे मिथ्यादृष्टि हैं, अभ्रान्त शिवपथिक हैं।

卐 ॐ 卐

५–२५६. जो कुछ हम करते हैं उसका फल हम ही को होता है, यदि हम संक्लेश भाव करें तो वह हमारे अकल्याण के लिये है, यदि विशुद्ध भाव करें तो वह हमारे कल्याण के लिये हैं, जो कुछ भी क्रिया करके दूसरों पर अहसान डालना महती मूर्खता है। भ्रम हटावो और सुख के मार्ग पर चलो।

卐 ॐ 卐

६–२६०. जो कुछ दूसरे करते हैं उसका फल उन्हीं में होता है, उस क्रिया से अपना लाभ या हानि मानना मूर्खता है।

卐 ॐ 卐

७–२७६. पर वस्तु को ग्रहण करने वाला चोर कहलाता, परन्तु तुम तो सतत पर को अपनाते, धिक्कार ऐसी चोर जैसी जिन्दगी को।

卐 ॐ 卐

८-२८३. जो अपराध करने के बाद भी अपराध नहीं समझ पाते, वे महान् मोह मद के मतवाले हैं, परन्तु वे भी निन्द्य हैं, जो सतत आत्मा को समझते हुए भी अपराधी बन जाते हैं।

卐 ॐ 卐

९-३१९. जैसे धनी पुरुष पास रक्खे हुए स्वर्ण में बड़ा भाव सुनने के बाद घटता भाव सुनने पर कुछ खर्च खराबी न होने पर भी दुःखी होता है; उसी प्रकार वास्तविक वैराग्य शून्य ज्ञानी व त्यागी पुरुष, प्राप्त ज्ञान व त्याग में बड़े सन्मान की स्वीकारता कर चुकने के बाद सन्मान न होने पर, किसी के द्वारा कुछ हानि व क्लेश नहीं दिये जाने पर भी दुःखी होता है; अस्तु। उस के दुख में उसकी ही भूल मूल है।

卐 ॐ 卐

१०-४३५. वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान का अभाव अज्ञान है इस से सिद्ध है -कि ये सब शुभाशुभ करतूतें अज्ञान हैं, उन करतूतों से अपने को बड़ा समझना महती मूर्खता है, वस्तुतः जिसमें बड़प्पन है उस दशा में बड़ा मानने का भाव ही नहीं उठता, अतः बड़प्पन का परिणाम ही पागलपन है।

卐 ॐ 卐

११-४८६. लोग, व्यक्तिविशेष के आदर में भी धर्म का ही आदर करते हैं; यदि कोई व्यक्ति माने कि मेरा आदर है तब वही ठगाया गया, पतित हुआ दुखी हुआ, दुखों का बीज बो चुका, लोगों की कोई हानि नहीं हुई, उन्हों ने शुभोपयोग का लाभ ही उठाया, घात तो उसी व्यक्ति का हुआ जिसने भ्रम किया।

卐 ॐ 卐

१२-५५८. तुम तो सुखी ही हो, भ्रम से दुखी मानते—इसका इलाज कौन करे ? अरे—अपने चतुष्टय से अपना और पर के चतुष्टय से पर का स्वरूप समझ लो और मान लो, फिर कभी उस प्रतीति से च्युत मत होओ तब फिर कोई आकुलता नहीं, सारा गोरखधंधा सुलझ कर अलग हो जायगा।

卐 ॐ 卐

१३-७०४. पर्यायबुद्धि दुःख का मूल है, अनेक दुर्गतियों में जीव ने कठिन कठिन क्लेश सहे परन्तु जिस अवस्था में जो भी दुःख होता है उसे ही पहाड बना देता है; तथा अनेक भवों में अनेक वैभव पाकर छोड़े या छोड़ना पड़े फिर भी जो वैभव पाया उसे ही प्राण समझ बैठता

है; इन्हीं कुबुद्धियों के कारण दुःखी ही दुःखी रहना पड़ता है, अरे भव्य ! इन सब से भिन्न चैतन्य चमत्कारमय शुद्ध स्वरूप की भावना करो; यह ही सर्वसार व्यवसाय है।

卐 ॐ 卐
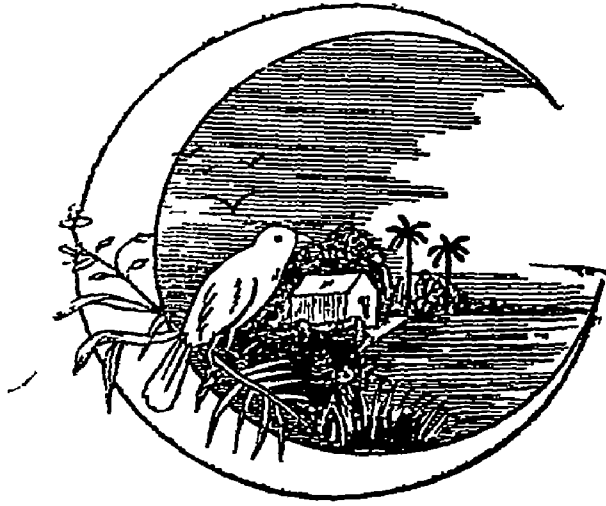
१८ दृष्टि

१–२३. संसार में कोई वस्तु न सुन्दर है न असुन्दर है, तुम्हारा रागभाव सुन्दर और असुन्दर बना देता ।

卐 ॐ 卐

२–५५. जो धर्म के लिये व्यापार करता है वह सद्गृहस्थ है और जो व्यापार के लिये धर्म करता है वह दुर्गति का पात्र है ।

卐 ॐ 卐

३–६० कल्याण को कठिन और सरल दोनों ही समझो तब योग्य पुरुषार्थ होगा, सिद्धि होगी ।

卐 ॐ 卐

४–६३. साधुजनों के आहार और विहार का भी प्रयोजन शुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि सिद्ध करना है; क्यों कि वे इहलोक व परलोक दोनों के सुख से निरपेक्ष हैं । अपने में इस निरपेक्षता के अंशों को खोजो ।

卐 ॐ 卐

५–७८. अपने दुखी होने में जो अपना अपराध सोचते वे

व्याकुल नहीं होते और जो पर का अपराध सोचते रहते वे बिना विपदा के ही दुखी बने रहते हैं।

卐 ॐ 卐

६–२०३. यदि किसी में दोष भी हों तो दोषाश्रय होने से दोषी को दुखी और दयापात्र समझो उससे ग्लानि न करो।

卐 ॐ 卐

७–२३५. शुद्धात्मतत्त्व का साधन संयम है, संयम का साधन शरीर है, शरीर का साधन आहार है, जो प्रत्येक साधनों का लक्ष्य शुद्धात्मतत्त्व को बनाता है वह शिवपथिक है।

卐 ॐ 卐

८–२८४. निज क्रिया का फल निज में ही होता है तब निज चेष्टा का फल पर में है ऐसी दृष्टि ही संसार है।

卐 ॐ 卐

९–५३७. जो क्रिया होती है, होओ, परन्तु अपने आपकी दृष्टि क्षण भर भी न छोड़ो, यही दृष्टि तुम्हें दुःख समुद्र से पार कर देगी।

卐 ॐ 卐

१०–५३९. कहीं इष्ट स्थान के विपरीत दिशा में जाने से इष्ट स्थान की प्राप्ति हो सकती है ? नहीं, तो इसी

प्रकार सुख के विपरीत की ओर दृष्टि होने से कहीं सुख पा सकेगा ? कभी नहीं, अतः ठहर, रुक, वापिस आ, अपने स्वरूप (ज्ञानमात्रानुभव) में प्रवेश कर। निजरूप ही सुख की दिशा है।

卐 ॐ 卐

११–५५०. कोई भी प्राणी मृत्यु के लिये तैयार होकर नहीं बैठता है, मृत्यु तो किसी भी समय अचानक आजाती है, अतः थोड़े समय के इस संदिग्ध जीवन में अपनी स्वात्मदृष्टि करो इसी में भलाई है।

卐 ॐ 卐

१२–५७७. जिसने दृष्टि पराश्रित बनाई–यदि बाह्य में किसी द्रव्य का ऐसा हो तो अच्छा है ऐसा विकल्प किया, भगवन्! वह पराश्रित है, अंशज्ञ है और आकुलित है। यह विकल्प ही आत्मा का शत्रु है। पर का विचार पर की चर्चा ही आकुलता के स्रोत हैं।

卐 ॐ 卐

१३–५८३. अरा—र र रा — – बाह्य दृष्टि में — पर्याय बुद्धि में संसारी का अनंतकाल व्यतीत होगया, अरे अब भी कुछ नहीं बिगड़ा, आज आत्मदृष्टि–द्रव्यदृष्टि करले; अभी तो इस से भी अधिक अनंतानंतकाल और व्यतीत

होना है, सो अनाकुल भी अनंतानंतकाल रहेगा।

卐 ॐ 卐

१४–६६५. जगत के काम अपने अपने उपादान से हो रहे हैं, होते रहेंगे, अथवा हों या न हों, किसी भी पर द्रव्य से तेरी कोई भलाई नहीं है। अपनी ओर ही दृष्टि रख।

卐 ॐ 卐

१५–५४८. दूसरों के गुणों को ही ग्रहण करो और उस के गुणों के चिन्तवन से आप स्वयं इस रूप बनने का प्रयत्न करो।

卐 ॐ 卐

१६–२४६. दूसरों के दोष ही देखना एक महादोष है यदि द्वेष की अन्वेषिका बुद्धि का प्रयोग करना हो तो अपने पर करो।

卐 ॐ 卐

१७–८३१. संसार की जो परिणति है यह उन्हीं की है—रहे, तुम तो अपने गुण अवगुण पर दृष्टिपात करो उन में जो गुण हैं उन्हें ग्रहण करो और जो दोष हैं उन्हें हटावो।

卐 ॐ 卐

१८–६१२. सन्मान का अभाव अखरना, दूसरे अच्छी दृष्टि से न देखें तो वह भाव अखरना, लौकिक वैभव में पड़ौसी

से अधिक न हो तो वह स्थिति अखरना, भिन्न पर आत्माओं से वर्द्धिष्णु स्नेह होना आदि किस पिशाचिनी की करतूत है?···अनात्मदृष्टि की। अनात्मदृष्टि छोड़ो और सुखी हो लो, तेरे ही हाथ की तो बात है।

卐 ॐ 卐

१९ कषाय

१–२५६. आत्मन् ! तेरे शत्रु हैं–विषय और कषाय, पर वस्तु कोई शत्रु नहीं, पर से हानि नहीं, हानि संकल्प विकल्प से है । क्रोध करना है तो विषय कषाय या संकल्प विकल्प से करो ।

卐 ॐ 卐

२–३४२. विकृत भाव (राग द्वेष आदि विषय कषाय) का आदर ही संसार का मूल है ।

卐 ॐ 卐

३–३४४. पाप से पुण्य तभी भला है जब उस में अहंकार न हो, यदि अहंकार है तब चाहे पुण्य हो या पाप, संसार विषवृक्ष का बीज ही है ।

卐 ॐ 卐

४-३०२. कषाय से हानि तो स्वयं की हो रही, पर का कुछ नहीं बिगड़ता, सुख चाहो तो सब घटनायें भूल जावो, ज्ञानमय निजात्मा पर दृष्टि दो ।

卐 ॐ 卐

५-३५४. जो दूसरों के उपभोग एवं उसमें आसक्त होने वालों में ईर्ष्या करता है वह उस वस्तु से-लोभ से-कषाय से विरक्त कैसे कहा जा सकता है।

卐 ॐ 卐

६-४२६. जहां पर कषाय हुई वहीं पर उसे नष्ट कर दो, अन्य वस्तु पर मत आजमावो अन्यथा शान्ति तो दूर रहो अशांति ही बढ़ती जावेगी।

卐 ॐ 卐

७-४३४. यदि दूसरे के प्रति तुम्हारे क्षोभ परिणाम हो तः दूसरे को बुरा न समझो अपने क्षोभ परिणाम को बुरा समझो और यह भावना करो कि इसका तो भला ही हो और मेरे इस क्षोभपरिणाम का नाश हो, क्योंकि मेरे अनर्थ का कारण मेरा क्षोभपरिणाम ही है अन्य नहीं।

卐 ॐ 卐

८-४७४. धनिकों को देख कर अल्पधनी को, ज्ञानी को देख कर अल्पज्ञानी को, प्रसिद्ध को देख कर अल्पप्रसिद्ध को क्लेश होने लगना संसार की पद्धति है व मूढ़ों का मेला है।

卐 ॐ 卐

९-४९४. तुम्हें करना कुछ नहीं केवल चंचलता समाप्त

कर दो, चंचलता का कारण कषाय है—उससे उपयोग हटावो—उपयोग से उसे हटावो।

卐 ॐ 卐

०-५२२. पाप के कारणभूत कषाय हैं अतः कषाय ही पाप हैं, फिर इनके कार्य में जो हिंसादि प्रवृत्तियाँ हैं वे उपचार से पाप माने गये हैं। अतः हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह पाप से बचने वालों को कषाय का परित्याग करना चाहिये।

卐 ॐ 卐

१-५२४. हे आत्मन्! तू कषाय के उदय में यह नहीं मालूम करता कि यह दुःखदाई है परन्तु कषाय के समय आकुलित होता रहता है व उसके बाद दुखी होने लगता, कषाय करने वाला मनुष्य अपना पुण्य क्षीण करता है व पाप बाँधता है जिसके फल में दुर्दशा होती है इस लिये कहीं कुछ हो तुम न क्रोध करो न मान माया लोभ करो, और न कुछ अहित विचारो।

卐 ॐ 卐

२-५४१. ईर्ष्या का भाव परिचित मनुष्य के प्रति होता है, अरे वह परिचित भी तो अन्य आत्माओं की तरह अन्य है यदि और कुछ नहीं हो सकता तो उस परिचित को

अपरिचित अन्य की श्रेणी में दाखिल कर विश्रांति पा ले।

卐 ॐ 卐

१३-४८४. काम, क्रोध, मान, माया, लोभ के परिणाम होते समय यह तो विचारो कि द्रव्यलिङ्गी तपस्वी साधु के अव्यक्त मिथ्याभाव तो मिथ्यात्व गुणस्थान सम्बन्धी सभी प्रकृतियों तक का बंध करा देता है तो इस समय क्या तेरे बंध नहीं हो रहा है ? इस का कुफल भोगना होगा ?

卐 ॐ 卐

१४-७४१. जब तुम्हारे कषाय की तीव्रता हो तब आप चुप्पी साधलो क्योंकि उस समय के निकले वचन दूसरों के अहित और क्लेश करने वाले होंगे जिससे तुम्हें भी पछताना होगा।

卐 ॐ 卐

१५-१७१. वस्तुतः चारों कषायों का अभाव छद्मस्थ के अगम्य है।

卐 ॐ 卐

१६-८१६. हम सब प्राणियों में माया (पर्याय) कृत भेद चाहे अनेक हों परन्तु सब में मूल चैतन्य समान है फिर किससे ईर्ष्या की जावे ? किससे विरोध किया जावे ?

卐 ॐ 卐

२० क्रोध कषाय

१-७४४. क्रोधी के वाप नहीं अर्थात् क्रोधी पर तो उसके बाप का भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। अन्य की इज्जत का ध्यान न रखना और विपत्ति डालना तो क्रोधी के बाये हाथ का काम है, वास्तव में तो क्रोधी अपनी चेष्टाओं को करके अपना ही घात करता है।

卐 ॐ 卐

२-७५०. यदि क्रोधी का समागम हुआ है तब अच्छा ही तो है जो वह बेचारा क्रोध करके अपनी बरबादी करता हुआ ही तुम्हें धैर्य और शान्ति में दृढ बना रहा है। ऐसा क्रोध की नौकरी करने वाला व्यक्ति तो बहुत रुपया खर्च करने पर भी मिलना कठिन है। ऐसे समागम में भी ग्लानि और क्षोभ न करो, आत्मस्वरूप के चिन्तन द्वारा शान्ति का परम सुख पाओ।

卐 ॐ 卐

-७६२. निन्दक और क्रोधी महा भयंकर पुरुष हैं इनसे दूर रहो, यदि इनका संग हो जाय तो विशेष परिचय रूप

प्रवृत्ति न रखो और न द्वेष भाव रखो परन्तु निन्दा और क्रोधवृत्ति को स्वपर घातक समझते रहो।

卐 ॐ 卐

४–१६८. क्या ऊपरी शांति से क्रोध की पुष्टि नहीं होती? अर्थात् हो सकती है जैसे क्रोध के आवेश में भी ऐसे वचन निकल सकते हैं कि "आप ज्ञानी हैं जो आप करें सो ठीक है" आदि, अतः ऊपरी शांति से शांति का फैसला करना या करवाना यथार्थ नही हो सकता, इसका निर्णय तो केवली के ज्ञान में है।

卐 ॐ 卐

५–१८६. हे आत्मन्! यदि क्रोध ही करना है तो अपने पर क्रोध करो क्योंकि कषाय युक्त यह आत्मा ही आत्मा का शत्रु है। अतः शुद्धात्मा व विभाव ऐसे दो टुकड़े कर दो व विभाव को मूल से नष्ट कर दो।

卐 ॐ 卐

६–२०६. शांति की परीक्षा क्रोध का निमित्त मिलने पर होती, अभीष्ट विषय साधन मिल जाने पर तो सभी शांत बन जाते।

卐 ॐ 卐

७–५४२. किसी बात पर गुस्सा होने में तुम्हारा साक्षात् विनाश हो रहा है उसे क्यों नहीं देखते, पर का सुधार

बिगाड़ ही तुम क्या कर सकते हो अपने पर कुछ दया तो करो।

卐 ॐ 卐

८-७९४. क्रोध एक महान् अंधकार है जिसमें सत्पथ नहीं सूझता इसीलिये क्रोधी खुद मर मिटता और दूसरों को परेशान करता।

卐 ॐ 卐

९-७९५. क्रोध एक अग्नि है जिससे आत्मा के सब गुण जले से हो जाते हैं। क्रोधी के जीवन में शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती—एक क्रोध को छोड़ो—सब मामला साफ होता चला जावेगा।

卐 ॐ 卐

१०-७९६. क्रोध के समय मौन रहना या समय टालना उचित है,...और...कुछ समय आत्मस्वभाव और जगत का यथार्थ स्वरूप व अपनी मुसाफिरी का विचार करो।

卐 ॐ 卐

११-८४०. रे क्रोध! तेरे में बड़ी ज्वाला है सारे गुण फूंक देता है!...तू उस ज्वाला में नहीं जल पाता; अग्नि भी तो ज्वाला में स्वयं-जल मर-जाती है; तू अग्नि ही जैसा बन

जा तब भी ठीक है किन्तु तू विलक्षण आग है !,...
उद्दण्ड मत होओ तेरे विनाश की बूटी (स्वपरविवेचिनी
प्रज्ञा) मैंने पा ली है।

卐 ॐ 卐
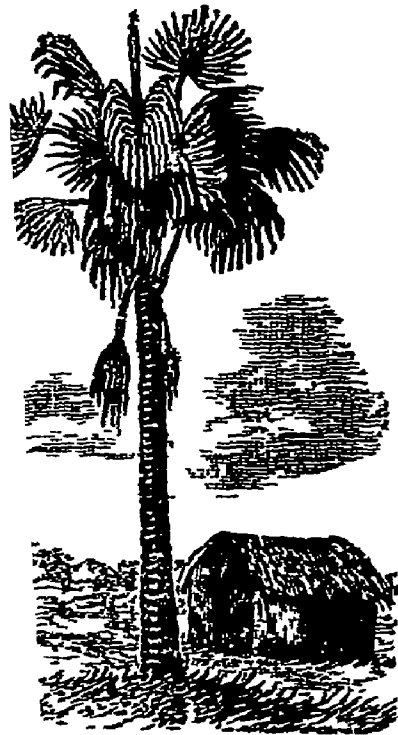
२१ मान कषाय

१-४६. मानी पुरुष सबको छोटा देखते पर सब लोक मानी को छोटा देखते जैसे पहाड़ की चोटी पर चढ़ा हुआ मनुष्य नीचे चलने वाले सब लोकों को छोटा देखता पर सब लोक चोटी पर चढ़े हुए को छोटा देखते, वस्तुतः महान् हो जाने पर छोटे बड़े की कल्पना ही नहीं रहती।

卐 ॐ 卐

२-६४. अतस्तत्त्व की उपलब्धि के लिये जब नरदेह में रह कर भी मैं मनुष्य हूं यह अध्यवसान त्याज्य है तब अन्य अहंकार तो सुतरां बाधक सिद्ध हो जाते।

卐 ॐ 卐

३-१०५. जब तक रति अरति का विकल्प है तब तक परम तत्त्व प्राप्त नहीं और जब परमतत्त्व की प्राप्ति है तब वह विकल्प नहीं, पूर्वपक्ष में तो अभिमान किस बात पर किया जाय, द्वितीय पक्ष में अभिमान करने का अवसर ही नहीं अतः सिद्ध है अभिमान निपट अज्ञान है।

卐 ॐ 卐

४–१६६. नम्रता द्वारा भी मान की पुष्टि हो सकती है अतः नम्रता द्वारा भी यह निर्मान है यह सिद्ध नहीं होता।

卐 ॐ 卐

५–१६०. यदि मान ही करना है तो ऐसी चीज का मान करो जिससे बढ़कर तीनों लोकों में अन्य पदार्थ नहीं, वह है—अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख व वीर्य, इस चतुष्टय-मय आत्मा से भिन्न परद्रव्य को तुच्छ मानो।

卐 ॐ 卐

६–२१०. निरभिमानता की परीक्षा अभिमान या अपमान का निमित्त मिलने पर होती, प्रशंसा के काल में तो सभी नम्र से बन जाते।

卐 ॐ 卐

७–४६४. B कषायों में प्रबल मनुष्य के मान है अतः इस मिथ्या जगत में बड़प्पन मत चाहो यहां किसी का कुछ नहीं, न रहता है, सब अपने अपने कषाय के परिणमन हैं।

卐 ॐ 卐

८–७४५. मानी के छाप नहीं अर्थात् मानी पर किसी के सद्-गुणों की छाप नहीं पड़ सकती। दूसरों को तुच्छ समझना और तिरस्कृत करना मानी के बायें हाथ का काम है, वास्तव में तो मानी अपनी चेष्टाओं को करके अपना

ही घात करता है ।

卐 ॐ 卐

९–७५१. यदि मानी का समागम हुआ है तब अच्छा ही तो है जो वह बेचारा मान कषाय से अपनी बरबादी करके भी तुम्हारे मान कषाय का संस्कार दिखाता हुआ (क्यों कि दूसरे का मान पसंद न होना भी मान कषाय का फल है) तुम्हें मान कषाय को दूर करने की शिक्षा देने में निमित्त बन रहा है । ऐसे समागम में भी क्षोभ न करो, आत्मस्वरूप के चिन्तन द्वारा शान्ति का परम सुख पाओ ।

卐 ॐ 卐

१०–७६७. लौकिक कार्यों की हठ मानकषाय के बिना नहीं होती, मानकषाय के कारण रावण की संक्लेश में मृत्यु हुई; यदि हठ ही करना है तो आत्मतत्त्व (जिसमें हठ नहीं) पाने की हठ करो । अन्य जगत के कार्यों में रखा ही क्या है ?

卐 ॐ 卐

२२ माया कषाय

१–१७०. निर्माय सिद्ध करने के लिये अपने दुर्गुण कहकर भी माया को पुष्ट किया जा सकता है।

卐 ॐ 卐

२–१६१. यदि माया ही करना है तो ऐसा करो जो भले ही ऊपर से वाणी व चेष्टा राग की निकले पर मन में वैराग्य ही रहे।

卐 ॐ 卐

३–२११. निष्कपटता की परीक्षा स्वार्थ साधन के अवसर पर हो जाती है।

卐 ॐ 卐

४–२५५. कल्याण चाहते हो तो माया की होली कर दो यह शल्य है इसके त्याग के बिना व्रती नहीं हो सकता। इस शल्य के छूटने पर क्रोध, मान, लोभ आदि दुर्गुण अनायास शिथिल होकर निकल जावेंगे।

卐 ॐ 卐

५–७४६. मायाची के पाक नहीं अर्थात् उसके हृदय में

पवित्रता नहीं आ सकती।

卐 ॐ 卐

६-७८४. जिनके स्वपरानुग्राही चिन्तवन व ऐसा ही वचन व ऐसी ही चेष्टा होती है वे सरल योगी महात्मा धन्य हैं, उनसे किसी का अहित नहीं होता और वे अपने शांति पथ में बढ़ते जाते हैं।

卐 ॐ 卐

७-७८८. सरलता की परीक्षा कुटिलों से अनन्य रहने वाले कर सकते हैं।

卐 ॐ 卐

८-७६८. माया किसी पदार्थ या परिस्थिति के स्नेह बिना नहीं होती सो सोच तो सही जगत का कौन सा पदार्थ तेरा हितकर है ? व सहज स्वभाव (जिसमें माया का अभाव है) के अतिरिक्त कौनसी स्थिति सुखद है ? फिर किस लिये आत्मा को कुटिल बनाया जावे।

卐 ॐ 卐

६-७६६. माया एक बुरी शल्य है; इसके रहते हुए न व्रत है न शांति है, असार वैभव मिलो या न मिलो,...माया का बर्ताव उचित नहीं है; अपने पर करुणा करो।

卐 ॐ 卐

१०-८०२. ठगे जाने से ठगना बुरा है; ठगे गये व्यक्ति के आत्मा का क्या बिगाड़ हुआ ? बाह्य पदार्थ का ही वियोग संयोग रहा परन्तु ठगने वाला तो आत्मा को कुटिल बना कर अपने सब प्रदेशों में मलीन बन रहा है, दुर्गति की तैयारी कर रहा है।

卐 ॐ 卐

११-८०३. कौन किसे ठग रहा है ? ठगने वाला आत्मा अपने आप को ठग रहा है। मायाचार को धिक्कार है जो स्वामी को बरबाद कर रहा है।

卐 ॐ 卐
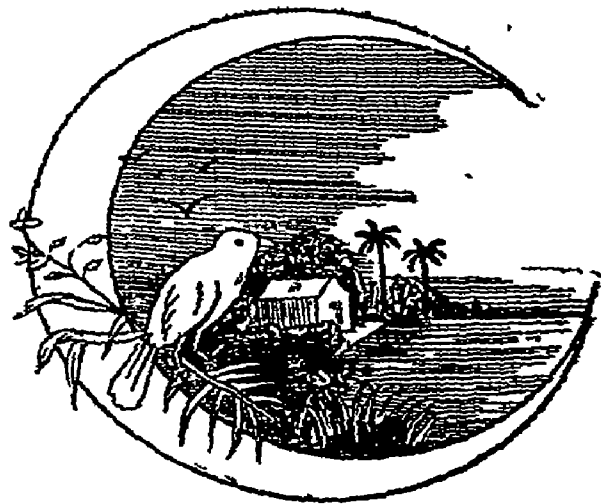
२३ लोभ कषाय

१-१७१A. दान देकर भी प्रतिष्ठा का लोभ बढ़ाया जा सकता है।

卐 ॐ 卐

२-१६२. यदि लोभ ही करना है तो आत्मा की पवित्रता के विकास का लोभ करो।

卐 ॐ 卐

३-२१२. निर्लोभता की परीक्षा रत्नत्रय के धारक व उपदेशक धर्मात्माओं व संस्थाओं की सेवा के समय होती है।

卐 ॐ 卐

४-४६८. इस जगत के पथ में विविध प्रलोभन के गर्त हैं उनसे बचकर रहो अन्यथा सांसारिक यातनाओं के सदन में ही समय बिताना पड़ेगा।

卐 ॐ 卐

५-७४७. लोभी के नाक नहीं अर्थात् लोभी पुरुष के स्वाभिमान या आत्मगौरव नहीं होता, अन्याय का मूल कारण प्रायः लोभ है।

卐 ॐ 卐

६–८०१. आत्मा के विभाव का लोभ होने से लोभी होता; बाह्यवस्तु के लोभ का व्यवहार करने वाले के विभाव का लोभ है ही। जिसके विभाव को अपनाने का लोभ नहीं उसे बाह्यवस्तु का लोभ नहीं होता तथा यथार्थ निर्लोभ भी हो जाता।

卐 ॐ 卐

७–८१८. लोभ बहुत बुरी आपत्ति है; धन कमा कर व पाकर भी जिनके तृष्णा व लोभ रहता है उनकी दुर्गति होती है; इससे अच्छा तो यह है—जो धन ही न मिले; यदि धन न होता तो संभवतः लोभ का पङ्क तो न लगता, दुर्गति तो न होती।

卐 ॐ 卐

८–१८६. दीन वही है जो सांसारिक सुख का लोभी हो, आत्मसुख का लोभी तो सांसारिक सुख, दुख के अभाव का लोभी है अर्थात् लोभ के अभाव का लोभी है अतः वह लोभी भी नहीं, दीन भी नहीं।

卐 ॐ 卐

९–८७२. लोभी पुरुष लौकिक प्रयोजन के लिये (जिसमें आत्मा का बिगाड़ ही है) पर के मुख को ही देखता रहता है; अच्छा···बताओ—जो टुकड़ों के लिये पर के मुख के

ओर ही देखता रहे ऐसा कौनसा पशु है ?...उस वृत्ति को छोड़ो, उसका मूल जो पर वस्तु की तृष्णा है उसे त्यागो। मरना तो एक दिन होगा ही, साथ कुछ नहीं जाता।

卐 ॐ 卐

१०–८७३. लोभ का बाप परिग्रह है, परिग्रह होने पर कुविचार हो जाते हैं अर्थात् परिग्रही कुभावों का संग्रह करता रहता है। अपने ज्ञानस्वरूप से अतिरिक्त कहीं कुछ अपना मत मान, फिर लोभ कहाँ टिकेगा ? भाई देख ! अपना क्या है ? फिर लोभ का भूत शिर क्यों चढ़ाते ?

卐 ॐ 卐

११–६१८. पर पदार्थ का लोभ कर कौन रहा है ? वे तो जुदे ही हैं, मानो तो अपने नहीं होते, न मानो तो अपने नहीं होते; यहाँ तो सर्वत्र लोभकषाय का लोभ हो रहा है—लोभकषाय को नहीं छोड़ना चाहते; पदार्थ तू छूटा हुआ ही है।

卐 ॐ 卐

२४ त्याग

१–११३. परम अभीष्ट की सिद्धि इष्ट कल्पना के त्याग में होती है और उस समय अभीष्ट सिद्धि हो चुकी यह कल्पना नहीं रहती परन्तु उसके निराकुल आनंदमय सत्फल का भोक्ता अवश्य होजाता जो क्षीणाक्षीण मोही सम्यग्दृष्टि के लक्ष्य (ध्येय) का विषय है।

卐 ॐ 卐

२–१२०. आत्मीय व शारीरिक स्वास्थ्य का रक्षक, विषय कषाय का त्याग है; विषय कषाय स्वास्थ्य (स्वस्थिति) का घातक है, अतः दोनों प्रकार का स्वास्थ्य चाहने वाले अन्य पथ्य व औषधि न खोजें और मूल तत्त्व पर पहुंचें।

卐 ॐ 卐

३–१३४. यदि कोई निरन्तर स्त्रीप्रसंग करे तब वह स्त्रीप्रसंग के योग्य नहीं रहता, अतः विषयानन्द के अर्थ भी विषय त्याग करना अर्थात् ब्रह्मचर्य से रहना जरूरी है; जब विषयत्याग से ऐहिक सुख भी होता तब पूर्ण विषय त्याग

से अनन्त सुख होगा ही।

卐 ॐ 卐

४-१३५. यदि कोई निरन्तर खाता रहे तो वह भोजन के योग्य नहीं रहता, अतः भोज्यसेवन के लिये भी भोज्य-त्याग करना जरूरी है; जब भोज्य त्याग से ऐहिक सुख भी होता तो निरीहतापूर्वक भोज्यत्याग से अनन्त सुख होगा ही।

卐 ॐ 卐

५-१३६. यदि कोई सुगंधित पदार्थ निरन्तर नासिका पर रखे ही रहे तो फिर उसे सुगन्ध का आनन्द नहीं आता; अतः गंधानंद के लिये भी घ्राणविषयत्याग जरूरी है; जब गंधत्याग के कारण तद्विषयक आनंद आता तब निरीहतापूर्वक विषयत्याग से अनन्तसुख होगा ही।

卐 ॐ 卐

६-१३७. यदि कोई रम्य वस्तु को निरंतर देखता ही रहे तो आनंदहीन हो जाता अतः रम्यावलोकनानंद के लिये चक्षुर्विषय त्याग आवश्यक है जब विषय त्याग पूर्वक ऐहिक सुख होता तो निरीहता पूर्वक विषय त्याग से अनंत सुख होगा ही।

卐 ॐ 卐

७-१३८. यदि कोई मधुर शब्द निरंतर सुनता ही रहे तो मधुरता का आनंद नहीं रहता अतः मनोज्ञशब्दानन्द के लिये भी तत्त्याग आवश्यक है जब विषय त्यागपूर्वक ऐहिक सुख होता तो निरीहतापूर्वक विषयत्याग से अनंत सुख होगा ही।

卐 ॐ 卐

८-१७२. दान का दूसरा नाम त्याग भी है, क्या ही अच्छा होता जो लोक में दान शब्द का व्यवहार न करके त्याग शब्द का व्यवहार किया जाता, संभव था जो त्याग शब्द के प्रयोग से मनुष्य लक्ष्य पर शीघ्र पहुंच जाता।

卐 ॐ 卐

९-१७३. अथवा मोहियों की चेष्टा विलक्षण है यदि त्याग शब्द भी व्यवहार में आता तो वह भी रूढ़ि शब्द कह-लाने लगता अन्यथा द्वन्द्व (दन्द) शब्द का अर्थ 'संयोग' छोड़कर दुःख ही में क्यों रूढ़ हो गया।

卐 ॐ 卐

१०-२६२A. मुग्धजन यदि धर्मार्थ पर वस्तु का त्याग करते हैं तो निजक्षेत्र से अन्यत्र स्थित ही पर वस्तु को छोड़ते हैं।

卐 ॐ 卐

११-२६२B. विवेकीजन निज क्षेत्र में स्थित पर वस्तु का त्याग करते हैं, श्रद्धा द्वारा तो सर्वथा त्याग कर ही देते व चरित्र द्वारा यथाशक्ति उसको दूर करते हैं व त्याज्य भावना बनाये रहते हैं।

卐 ॐ 卐

१२-२८५. त्याग वही उत्तम है जिसमें पर की प्रतीक्षा और आशा न करना पड़े।

卐 ॐ 卐

१३-२८६. पर की प्रतीक्षा व आशा न चाहने वालों को आवश्यकतायें परिग्रह व आरम्भ कम से कम कर देना चाहिये।

卐 ॐ 卐

१४-२६०. याद रखो—आत्मशांति के लिये परिचय, उपकार, प्रवृत्ति, कषाय, विषयाभिलाष यह सब छोड़ना ही होगा, जब तक इनके छोड़ने में देर करोगे तब तक दुखी ही रहोगे; कोई तुम्हारी रक्षा न करेगा, तुमही अपनी रक्षा कर सकोगे, अतः कुमति को दूर करो।

卐 ॐ 卐

१५-४१८. सर्व का त्याग ही सुख है किन्तु तुम सर्व संग्रह

करते हो तब बताओ दुःख का उपाय करने से सुख कैसे होगा।

卐 ॐ 卐

१६–६६०. त्याग व्रत चारित्र धारण करके जो मनुष्य विषय कषाय में लीन होता है वह अधम निन्द्य है, कायर है, जैसे रण के लिये उद्यत पुरुष शस्त्रधारी होकर भी रण छोड़ भागे तब वह निन्द्य ही है।

卐 ॐ 卐

१७–७०१. कुछ त्याग की ओर मन चलाओगे और कुछ सामाजिक संस्थाओं की ओर मन चलाओगे तो किसी ओर के पूर्ण न रहोगे अतः यही ठीक है कि जिसका संकल्प किया, वेश किया उसे ही पूरा निभाओ, क्योंकि त्याग में पराधीनता नहीं, सामाजिक बातों में तो बहुत ही पराधीनता है।

卐 ॐ 卐

१८–७०२. राग छोड़ते हो तो बिल्कुल छोड़ने का ही प्रयत्न करो, उसकी लपेट ही रखने में क्या रक्खा ?

卐 ॐ 卐

१९–७२०. जो भाव बहुत दिनों से भी बनाया गया हो या कुछ उद्यम भी कर लिया हो परन्तु यदि उसमें आत्मा

का लाभ न समझो तो उसके छोड़ने में संकोच करो और न देर करो।

卐 ॐ 卐

२०--८७. स्वद्रव्य में स्वद्रव्यत्व का बुद्धि द्वारा ग्रहण करने के साथ यदि परवस्तु का त्याग है तब वह त्याग या चारित्र नाम पाता है क्योंकि अनेकान्तात्मक वस्तु का स्वभाव होने से चारित्र भी अनेकान्तात्मक (ग्रहण त्याग रूप) होता है।

卐 ॐ 卐

२१--८६२. रागद्वेष का त्याग ही सच्चा त्याग है केवल भेष तो दम्भ है और परवस्तु के त्याग से ही संतुष्ट से हो जाना मिथ्या अन्धकार है।

卐 ॐ 卐
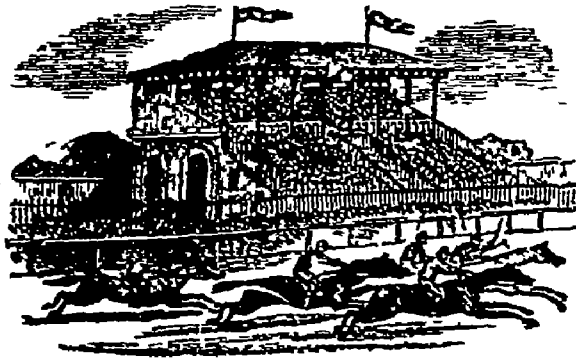
२५ आत्म विभव

१-१२८. धनवान् और गरीब आपेक्षिक हैं, वास्तविक नहीं; क्योंकि कोई भी मनुष्य उससे गरीब पर दृष्टि डाले तब धनवान् जचता और धनवान् पर दृष्टि डाले तब गरीब जचता। वास्तव में तो जिसके ज्ञानसँपत्ति का विकास है वह अमीर है और जिसके ज्ञानसँपत्ति का विकास नहीं वह गरीब है।

卐 ॐ 卐

२-१२९. बहिरात्मा सभी एक से गरीब हैं और परमात्मा सभी एक से अमीर हैं; अमीरी में तारतम्य असंयत आत्मज्ञानी से लेकर क्षीण कषाय संयत तक (परमात्मत्व पाने से पहिले तक) है परन्तु उनमें सम्यक्त्व से गरीब कोई नहीं है।

卐 ॐ 卐

३-१३०. हे देव! मुझे अनंत दर्शन की चाह नहीं, किन्तु अपना ही दर्शन करना चाहता हूँ।

卐 ॐ 卐

४--२३७. सुवर्ण रत्न आदि की कीमत ज्ञानविशेष (कल्पना) के बल पर है, स्वतंत्रता से तो उनकी कीमत या कदर वही है जो पत्थर मिट्टी की है। वास्तविक विभव तो आत्मगुण ही है।

卐 ॐ 卐

५--३८८. स्वरूप दृष्टि द्वारा अपने को ज्ञानमात्र अनुभव करते हुए विभाव को इस तरह भिन्न देखो--जैसे अन्य आत्मा का विभाव जाना जाता है।

卐 ॐ 卐

६--४३७. तुम धन, वैभव, कीर्ति आदि से अपने को बड़ा न समझो, वे तो पर वस्तु हैं; अपने को बड़ा समझो अपनी वस्तु से अर्थात् दर्शन ज्ञान चारित्र की स्वच्छता या वृद्धि से अपने को बड़ा समझो।

卐 ॐ 卐

७--४५०. भगवत्स्वभावरूप निज आत्मा के गुणों में अनुराग करो, व्यवहार के काम तुम्हें शान्ति न पहुंचावेंगे।

卐 ॐ 卐

८--४६६. अपने को इस प्रकार अनुभव करो--मैं ज्ञानपिण्ड हूं--सहजानंद स्वभावी हूं--स्वतन्त्र हूं--सबसे भिन्न हूं।

卐 ॐ 卐

९–४८१. जो पर्यायबुद्धि को छोड़कर ज्ञानमात्र तत्त्व पर दृष्टि डालते हैं, उनके लिये जगत में कुछ भी करना शेष नहीं—उन्होंने करने योग्य कर लिया व उनसे छूटने योग्य सब छूट गया।

卐 ॐ 卐

१०–४८७. आत्मन्! तुम स्वयं ज्ञानमय व आनन्दघन हो, इस दृश्य अस्थिर जगत् के प्रति संकल्प विकल्प करते हुए तुम्हें अपनी मूर्खता पर हँसी नहीं आती? तुम तो ज्ञानरूप ही रहो, यहाँ तुम्हारा न कुछ है और न कभी कुछ हो सकता।

卐 ॐ 卐

११–६०१. चिच्चमत्कार मात्र ही तात्त्विक चमत्कार है, चिच्चमत्कार से अनभिज्ञ पुरुष ही लौकिक चमत्कार का आदर करते हैं—जो स्वरूप से भ्रष्ट कर देता है।

卐 ॐ 卐

१२–६३७. रागद्वेष मोह छूट जाय केवल ज्ञान में प्रतिष्ठित होजाऊँ इससे बढ़कर मेरा वैभव कहीं नहीं है, यह ही होओ और सब टलो—सबका उपयोग हटो।

卐 ॐ 卐

१३–४६७. मेरा स्वपरिणमन ही लोक और परलोक है स्व-

गुण ही मेरा धन वैभव है चैतन्य लोक का अनीति रहित परिणमन ही यश प्रतिष्ठा है; यह दृश्यमान जगत इन्द्र-जाल है, माया है, क्षणिक है, भिन्न है यहाँ मेरा कुछ नहीं है।

卐 ॐ 卐

१४–८४५. हम दूसरों को तो पूरा अच्छा देखना चाहते हैं परन्तु अपनी गलती खोज कर उसे निकालने से होने वाली पूर्णता की कुछ चिन्ता नहीं करते। सोच तो··· अपना दूसरे से पड़ेगा या अपने से? अपने विभव को देख और सत्य प्रभुतापा।

卐 ॐ 卐

२६ आत्मज्ञान

१–१६६. हे प्रभो ! मुझे अनन्त ज्ञान की तृष्णा नहीं, किन्तु जिस आत्मज्ञान के विना मैं तृष्णावी हो रहा हूँ—तृष्णा से दूर रहने के अर्थ में आत्मज्ञान (अपने ज्ञान) को ही चाहता हूँ।

卐 ॐ 卐

२–२०१. ज्ञानी जीव प्रत्येक पदार्थ से हित की शिक्षा ग्रहण करता रहता और अज्ञानी जीव प्रत्येक पदार्थ में चाहे वे साधु हों या असाधु हों—ऐसी कल्पनायें करता जिसमें उसका अहित हो।

卐 ॐ 卐

३–२१३. कर्म का भय उनके होता जो कर्म का फल (संपदा या सांसारिक सुख) चाहते हैं व पर पदार्थ की परिणति को विपदा समझते हैं, ज्ञानी जीव के ये दोनों बातें नहीं फिर उनका कर्म क्या करेगा ?

卐 ॐ 卐

४–२३८. जो ज्ञान विश्व की कीमत करता है, उस ज्ञान की

कीमत कुछ भी नहीं की जा रही है; जो ज्ञान की कीमत समझ लेता है वह शीघ्र ही अनर्घ्य पद पा लेता है।

卐 ॐ 卐

५–२९४. एक ज्ञानमात्र के स्वाद में कोई विपत्ति नहीं, जहां इससे चिगे तहां संतोष का नाम नहीं।

卐 ॐ 卐

६–३००. जो पुरुष यह कहते हैं कि मेरे जिह्वा नहीं तो उस की बात मान्य नहीं, क्योंकि जिस जिह्वा से कह रहा है वही तो जिह्वा है; इसी प्रकार जो यह कहे कि मेरे आत्मा का ज्ञान नहीं तो उसकी बात अमान्य है, क्योंकि जो ऐसा जान रहा है वही तो आत्मा है।

卐 ॐ 卐

७–३३१. संसार जाल महागहन है, इससे निकलने के लिये ज्ञानभावना रूप महान् बल का प्रयोग करो।

卐 ॐ 卐

८–३५०. मनोहर ! मन रमाने का स्वाध्याय से उत्तम अन्य साधन नहीं;···समागम में ··प्रकृति विरुद्ध मनुष्य भी मिल जाते हैं— तब सक्लेश की संभावना है, अतः अपना लक्ष्य सर्वप्रथम ध्यान व द्वितीय – स्वाध्याय रखो। समय पर जो वैयावृत्य, वात्सल्य व उपकार हो जाय अच्छी

बात है, पर निःशल्य रहो ।

卐 ॐ 卐

९–४२४. मनोहर ! तुम्हारे सुख का उपाय अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है, इसे आगमोपयोग व अध्यात्मोपयोग द्वारा प्रवर्द्धित करते रहो, अन्य उपाय के अन्वेषण की चिन्ता करना व्यर्थ है और अन्यत्र मन डुलाना भी अत्यन्त व्यर्थ है ।

卐 ॐ 卐

१०–५०२. आत्मज्ञान ही आत्मा का रक्षक है, अतः इसे ही देखो, इसे ही पूँछो, इसे ही चाहो, इस ही में मग्न होओ, इस ही में संतुष्ट होओ, सुखी होने का यह ही उपाय है ।

卐 ॐ 卐

११–६१७. मैं अपने ज्ञान के सिवाय और किसी को भी नहीं भोगता हूं; प्रत्येक पदार्थ तो ज्ञान के विषय हैं, उन का भोग तो उन्हीं में है । हां जैसा ज्ञान होता है वैसे ज्ञान को भोगता हूं । आत्मा के सुख आदि गुणों का भी अनुभव ज्ञान द्वारा होता है, वहां भी साक्षात् भोग ज्ञान का ही है; इसी प्रकार किसी को करता भी नहीं हूं, अपने ज्ञान को ही करता हूं; इसलिये "ज्ञानमात्रमेवाहम्" ।

卐 ॐ 卐

१२-६१८. लोग कहते हैं—हमें अमुक पदार्थ जान से प्यारा है, वे सब झूठ कहते हैं, क्योंकि परीक्षा करने पर वे जान की रक्षा का ही प्रयत्न करते हैं, किन्तु यह बात सत्य है जो जान से प्यारा ज्ञानानुभव है, क्योंकि अध्यात्मयोगी (जिनके ज्ञानानुभव है) परीक्षा के समय जान की उपेक्षा करते हैं और ज्ञानानुभव में तन्मय होते हैं।

卐 ॐ 卐

१३-८३६. शान्तिमार्ग के प्रयोजनभूत तत्त्वों को छोड़कर और और दुनियां की बातों की जानकारी में जो लट्टू हो रहा है वह बड़ा अज्ञानी है और जिसने शान्ति के आधारभूत निजब्रह्मत्त्व को देखा वह ज्ञानी है।

卐 ॐ 卐

१४-८५०. आत्मज्ञानी ही वीर है और सच्चा स्वपरोपकारी है।

卐 ॐ 卐

१५-८६६. व्यापारियों का प्रयोजन एक धन प्राप्ति है तो ज्ञानाभ्यासी भव्य का प्रयोजन तात्त्विक शांति ही है, आत्मज्ञान शांति का मूल है।

卐 ॐ 卐

१६-८६७. आत्मज्ञान के साधक सत्संग और स्वाध्याय है, सत्संग तो पराश्रित भी है परन्तु स्वाध्याय में वह परा

ञीनता नहीं अतः स्वाध्याय में विशेष उपयोग लगाकर अपने मानव जीवन को सफल करो और आत्मज्ञानी बन कर अब झंझटों की रस्सी काट दो।

卐 ॐ 卐

१७–८६८. आत्मज्ञानमय भावना उत्कृष्ट तप है, अरे···केवल तप ही नहीं आत्मरुचिमूलक होने से दर्शन भी है और रागद्वेषनिवृत्तिपरक होने से चारित्र भी है तथा ज्ञान तो है ही, अतः आत्मज्ञानमय भावना से चारों आराधनायें हो जाती हैं।

卐 ॐ 卐

१८–६२५. मेरे (अपने) को समझो उसे कोई इष्ट अनिष्ट नहीं और न इसी कारण कोई आकुलता है।

卐 ॐ 卐

२७ अद्वैत

१-७२३. निज अद्वैत आत्मा को तको;...उसे प्रसन्न (निर्मल) बनाओ।

卐 ॐ 卐

२-२०८. निजभाव में ठहरने वाले के विपदा का नाम भी नहीं है और जो निजभाव से भ्रष्ट हैं उन्हें तो संपदा भी विपदा ही है।

卐 ॐ 卐

३-३५७. तुम सदा अकेले ही रहोगे अतः इस अकेलेपन की जुम्मेदारी का ध्यान रखकर मन, वचन, काय की प्रवृत्ति करो।

卐 ॐ 卐

४-४०२. किसी बाह्य द्रव्य का मुझसे सम्बन्ध नहीं अतः निज उपयोग भूमि में गैर का राज्य मत होने दे, सर्व को अपरिचित के रूप में देख, तुम्हारा रत्नत्रय ही तुम्हें शान्त रख सकता है अन्य नहीं।

卐 ॐ 卐

५–४४०. जिस संसार में राम लक्ष्मण से महापुरुष न रहे वहां तू क्या राज्य करना चाहता है ? सबसे राग छोड़ केवल अकेलेपन में संतोष कर ! बाह्य द्रव्य तुझसे भिन्न हैं अतः तेरे काम आ ही नहीं सकते ।

卐 ॐ 卐

६–४५८. मैं अपना ही अनुभव कर रहा चाहे वह रागरूप हो या अन्य रूप, अपना ही काम कर रहा, अपने में ही फल पा रहा अन्यत्र मानना ही दुःख में पड़ना है अतः सुख चाहते हो तो अनुभव क्रिया व फल जहां हो उतनी ही दुनियां समझो व अन्य से वृत्ति हटाओ ।

卐 ॐ 卐

७–४५६. तुम्हारा कहीं कुछ जाता नहीं, कहीं से तुममें कुछ आता नहीं अतः पर पदार्थ किसी परिणति में रहो तुम्हें तो हर हालत में निःशल्य रहना चाहिये ।

卐 ॐ 卐

८–५०७. मान लो—अधिक से अधिक कोई धनी हो गया पर उस आत्मा को क्या मिला ? अधिक से अधिक कोई शास्त्र का ज्ञानी होगया पर उस आत्मा को क्या मिला ? आत्मा तो एकाकी है, अपने में तन्मय और बाह्य से भिन्न है, यदि आत्मज्ञान न पाया तो कुछ न पाया ।

卐 ॐ 卐

९-५२३. हे आत्मन् ! क्यों दुखी है ? क्यों विवश है ? अपना कहीं कुछ मत मान, अपने प्रदेश गुण पर्याय ही अपने हैं, यही सुख दुःख के फैसले हैं, यहीं होनहार का विधान हैं, यह ही तेरे लिये सारा जगत है, यह स्वयं सुख का भण्डार है, यहीं दृष्टि रख ।

卐 ॐ 卐

१०-६७०. तुम्हें कौन सुखी कर सकता ? तुम्हारा कौन भला कर सकता ? कोई नहीं, तुम ही अपने को सुखी कर सकते हो तुमही अपना भला कर सकते हो अपने पर विश्वास रख, बाह्यपदार्थ की आशा दूर कर, कुछ भी तेरे सुख का साधक नहीं; तुम्हारा ज्ञानानुभव ही तुम्हारा हितकारी है ।

卐 ॐ 卐

११-६८८. इस अनित्य संसार में कोई किसी का साथी है क्या ?..., फिर क्यों मूर्खता कर रहा है, आत्मा में उपयोग रम जाने के अतिरिक्त किसी दशा में भी सुख नहीं है, यह निःसंदेह जान, कर्म भी तूने बनाये और तू ही मिटावेगा ।

卐 ॐ 卐

१२-६८५. हे आत्मन् ! तू स्वयं ज्ञान स्वरूप है और सुख स्वरूप है अपना ध्यान न करके कहां कहां भूला भटकता

फिर रहा है, ये ही दुख तो भव भव में अनादिकाल से भोगे, तू दुःख ही में चैन मान रहा है, अपने आत्मबल को संभाल, समस्त पर पदार्थों से एक दम रागछोड़ दे, तू अकेला ही था अकेला ही है अकेला ही रहेगा, बाह्य पदार्थ का सम्बन्ध तो लेशमात्र लाभ नहीं पहुंचा सकता, बल्कि संयोग के कारण कषाय के आश्रय होने से हानि ही हानि है।

卐 ॐ 卐

१३–७०७. सँसार में एक स्वयं के सिवाय अन्य कौन पदार्थ हितरूप है ? या हितकर है ? या साथ निभाने वाला है ? कोई नहीं; तब पर पदार्थ में मंगल, उत्तम, शरण की बुद्धि हटा कर एक स्वयं को ही मंगल उत्तम शरण समझो और विकल्प हटा कर सुखी हो लो।

卐 ॐ 卐

१४–७०८. संसार दुःख मय है और संसार क्या है ? कीर्ति नाम की चाह, विषयों की अभिलाषा अपमान की शंका, विषयों के वियोग में क्लेश, सन्मान और विषयों के बाधकों से द्वेष, इच्छानुसार स्व व पर की परिणति की चाह, धन वैभव आदि से सम्पन्न समझने का अहंकार ये सब संसार है सो यह संसार खुद का खुद में और

खुद ही नष्ट कर सकता है ।

卐 ॐ 卐

१५-७०९. लोक में संसार परम्परा बढाने वाले ही बहुत हैं, मुमुक्षु पुरुष विरला है अतः दूसरों के कर्त्तव्यों को देख कर अपना निर्णय करना धोखे से खाली नहीं है, अतः अपने को ही देख फिर अपने अन्तःपथ का निर्णय कर ।

卐 ॐ 卐

१६-९११. अकुशलता ! अकुशलता है कहाँ ? आत्मदृष्टि नहीं तो सर्वत्र अकुशलता है, एक निज अद्वैतदृष्टि में तो द्वितीय का संपर्क ही नहीं क्या आकुलता होगी ? क्या अकुशलता होगी ?...,...परन्तु हो आत्मदृष्टि ।

卐 ॐ 卐
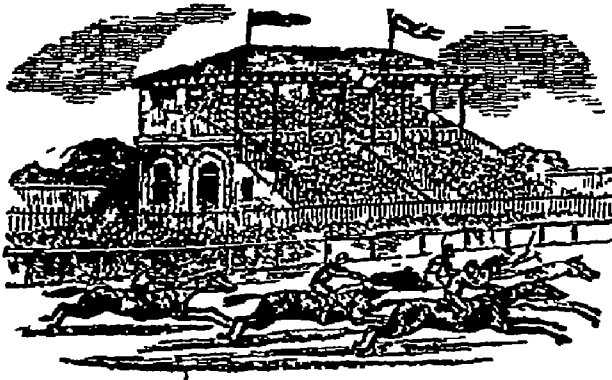
२८ संयोग वियोग

१-१८. किसी वस्तु के संयोग के लिये शोक करना इसलिये व्यर्थ है कि संयोग में शान्ति नहीं, स्वाधीनता नहीं और किसी वस्तु के वियोग में शोक करना इसलिये व्यर्थ है कि पर की रक्षा अपने आधीन नहीं, पर का अपने से तादात्म्य नहीं; तथा वियोग में अपने स्वरूप की हानि नहीं।

卐 ॐ 卐

२-१०८. वियुक्त वस्तु के संयोग होने का नियम नहीं, परन्तु संयुक्त वस्तु का वियोग नियम से होता है।

卐 ॐ 卐

३-१०६. कर्मभूमि के मनुष्यों में इष्ट वस्तु का वियोग होता ही रहता तो...वहां कल्याण भी अपूर्व होता अर्थात् वे मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं व सभी स्वर्गों में व ग्रैवेयक अनुदिश, अनुत्तरों में पैदा हो लेते हैं। भोग भूमि के मनुष्यों के इष्ट वियोग नहीं होता तो वे अधिक से अधिक दूसरे स्वर्ग तक ही पैदा हो पाते हैं।

卐 ॐ 卐

४–१४६. वियोग संयोग का फल है, अतः दुःख का मूल संयोग ही है इस लिये संयोग में रंच रुचि न कर।

卐 ॐ 卐

५–१४७. जो संयोग में हर्ष मानते हैं वे वियोग में दुखी होते, अतः वियोग के दुःख को न चाहने वाले संयोग में सुख न माने।

卐 ॐ 卐

६–१४८. संयोग व वियोग की आकुलता से बचने के लिये संयुक्त व वियुक्त द्रव्य की क्षणिकता, अशरणता व अन्यता का चिन्तवन करें।

卐 ॐ 卐

७–१५३. किसी भी प्राणी को देखकर तुम उसे अपरिचित ही समझो, पूर्व के परिचय को "स्वप्न में देखा था" ऐसा समझो।

卐 ॐ 卐

८–१६५. द्वन्द्व, दुःख, संताप, विभाव, विपदा आदि सभी अनिष्ट बातें संयोग में हैं। वियोग से अर्थात् केवल रह जाने से तो उन अनिष्टों का सर्वथा अभाव हो जाता, परन्तु मोही जीव संयोग को ही इष्ट मानता है।

卐 ॐ 卐

९–१८५. वर्तमान में जो तेरे विभाव व पर द्रव्य का संयोग है वह भी क्षण में भूतकाल के उदर में पहुंच जावेगा और जैसे भूतकाल के विभाव व संयोग स्वप्नवत् मालूम पड़ रहे हैं यह वर्तमान विभाव व संयोग भी स्वप्नवत् हो जायगा, इसलिये जिसे तुम्हें आगे स्वप्नवत् मालूम करना पड़ेगा उसे अभी स्वप्नवत् समझो तो महती शान्ति प्राप्त हो।

卐 ॐ 卐

१०–२६३. राग के अनुकूल चीज न मिलना भी एक संपत्ति है क्योंकि ऐसी घटना में आकुलता की जननी–तृष्णा–के विनाश करने का एक सुन्दर अवसर मिलता है।

卐 ॐ 卐

११–२६४. राग के अनुकूल चीज मिल जाना भी एक विपत्ति है, क्योंकि ऐसी घटना में आकुलता की जननी–तृष्णा–का प्रसार हो सकता, और उस तृष्णा से उस आत्मघाती को निरन्तर संक्लिष्ट रहना पड़ता है।

卐 ॐ 卐

१२–२६०. सांसारिक सुख समागम बच्चों के रेत का भदूना है और उसका फल उसका मिटना ही है।

卐 ॐ 卐

१३–३०६. इष्ट वियोग होने पर भेद विज्ञान से विषाद परिणाम न होने देना तो तपस्या है ही, परन्तु इससे भी अधिक तपस्या यह है—जो इष्ट समागम होने पर भेद विज्ञान से हर्ष परिणाम न होने देवे, अपने उपेक्षास्वभाव की रक्षा करे।

卐 ॐ 卐

१४–३०६. इष्ट समागम में हर्षाभाव की तपस्या करने वालों को अनिष्ट समागम में विषादाभाव की तपस्या करना सरल है।

卐 ॐ 卐

१५–३८४. जैसे माँगी हुई चीज में आत्मीयता नहीं रहती क्योंकि वह थोड़े समय ही पास रह सकती इसी तरह कर्मोदय से प्राप्त वैभव में ज्ञानी के आत्मीयता नहीं रहती क्योंकि उसका संयोग क्षणिक और पराधीन है।

卐 ॐ 卐

१६–८८६. वियोग से तो उद्धार होता है परन्तु संयोग से नहीं हो सकता, देख! कर्मों के वियोग से सिद्ध परमात्मा बनता, ज्ञानावरण कर्म के वियोग से सर्वज्ञ बन जाता और–आत्मस्वरूप के अतिरिक्त जो भाव हैं वे विभाव हैं उनके वियोग से सत्यसुख मिलता है। वियोग दुख की

चीज नहीं है।

卐 ॐ 卐

१७-८६०. संयोग का ऐसा कोई उदाहरण नहीं जो आत्म-हित का नियत साधक हुआ हो, और...देख ! कर्म के संयोग से संसार के दुःख मिलते हैं, व शरीर के संयोग से भूख प्यास आदि के दुःख मिलते हैं, परिवार संपदा के संयोग से चिन्ता परिश्रम विरोध के दुःख मिलते हैं; संयोग सुख की चीज नहीं बल्कि क्लेश का पिता है।

卐 ॐ 卐

२६ योग

१–२०४. सोचना आश्रव (कर्मबंध का कारण) है, यदि सोचना ही है तो निजशुद्धात्मा या परमात्मा का चिन्तवन करो।

卐 ॐ 卐

२–२०५. बोलना आश्रव है, यदि बोलना ही हो तो ऐसे शब्द बोलो जिससे शुद्धज्ञान (वैराग्य) का विकास हो।

卐 ॐ 卐

३–२०६. चेष्टा आश्रव है, यदि चेष्टा करना ही पड़े तो दोनों प्रकार के संयमरूप चेष्टा करो।

卐 ॐ 卐

४–२७१. काम वह करो जो सबकी जानकारी में किया जा सकता हो।

卐 ॐ 卐

५–२७२. बात वह बोलो जिसके बोलने के बाद गुप्त बनी रहने की इच्छा न करना पड़े।

卐 ॐ 卐

६–५४६. क्रोध के वेग में ऐसी भी बात कहने में आती है कि जो अपने अधिकार की बात तो है परन्तु उसका प्रयोग स्वयं को है अनिष्ट; तथा जिस पर क्रोध किया उसे अनुचित इष्टसिद्धि हो जाती है, अतः कैसा भी क्रोध हो वचन वह बोलो जिसके बाद शल्य न हो।

卐 ॐ 卐

७–५६६. जैसे धनवालों के लिये यह उपदेश होता है—कि आवश्यकता से अधिक संग्रह मत करो, जीवन के लिये जो आवश्यक है उतने से प्रयोजन रखो। इसी प्रकार तुम्हारा यह कर्तव्य होना चाहिये—पाँच इन्द्रिय और मन के व्यापार को उतना ही करो जो आत्महित के लिये अल्पपारम्पर्येण आवश्यक हो।

卐 ॐ 卐

८–५७०. वे ही शब्द (अनुराग से) सुनो जो आपकी निर्मलता के अर्थ आवश्यक हो।

卐 ॐ 卐

९–५७१ उसे ही देखो जिस के देखने से आपके दर्शन ज्ञान चारित्र में बाधा न आवे।

卐 ॐ 卐

१०-५७२. सूँघना तो आत्महित के लिये कुछ जरूरी है ही नहीं।

卐 ॐ 卐

११-५७३. वह ही भोजन, पानरस ग्रहण करो जितने से समिति पालन और स्वाध्याय आदि, संयम के साधन के योग्य शारीरिक शक्ति रहे।

卐 ॐ 卐

१२-५७४. लज्जा शीत आदि के निवारण के अर्थ ५ ही वस्त्र रखो—२ कौपीन, २ तौलिया या छोटे चद्दर, १ खेस या चादर तथा जीवरक्षादि के अर्थ दो छोटी मार्फी रखो। शरीर के रूक्ष होने पर जब फटना सा लगे या बाधा हो तब ही अल्प तेल मर्दन कराना, अनावश्यक आरम्भ परिग्रह से बिगाड़ ही है।

卐 ॐ 卐

१३-५७५. वह ही बात विचार में लाओ जो आत्महित के अर्थ आवश्यक हो, यदि इसके विपरीत बात विचार में आवे तो भेद विज्ञान भावना से उसे शीघ्र ही नष्ट कर दो।

卐 ॐ 卐

१४–७५८. जैसे तीर धनुष के प्रयोग से छोड़ दिया तब वह तीर वापिस नहीं आसकता, इसी तरह जो वचन मुख से निकल गया वह वापिस नहीं आ सकता। देख !! जब तक वचन नहीं निकाला तब तक तो वह तेरे वश में है किन्तु वचन निकलने पर तुम उसके वश में हो जावोगे, अतः जब बोलो तब हितमित प्रिय वचन बोलो।

卐 ॐ 卐

३० शुभोपयोग

१–४४२. मनोहर ! अशुभोपयोग से बचने के लिये कुछ न कुछ कार्य करने की आवश्यकता तो अवश्य है परन्तु जो कार्य दूसरों की प्रतीक्षा और आशा पर निर्भर हैं उसे मत करो, तब स्वाधीन कार्य क्या है ?—लेखन व स्वाध्याय ।

卐 ॐ 卐

२–३६०. नाट्य होने दो पर नाट्य तो समझो, शुभोपयोग करते हुए भी उसे नाट्य समझो, यदि नहीं समझ सकते तो हम तो फिर मिथ्यात्व समझते हैं ।

卐 ॐ 卐

३–३०५. यदि तुम कल्याण व उन्नति चाहते हो तो दूसरों के कल्याण व उन्नति में ईर्ष्या मत करो प्रत्युत उनके कल्याण व उन्नति की भावना रखो क्योंकि मात्सर्यभाव स्वयं अकल्याण है, इस अशुभोपयोग के रहते उन्नति हो ही नहीं सकती ।

卐 ॐ 卐

४–२८२. रे मनोहर ! ध्यान रख समाज त्यागियों को सुख-पूर्वक रखता है, उनके दुःख दूर करता है, उनकी सभी चिन्तायें करता है, पूजता है, आदर से देखता है, सर्वस्व सौंप देता है, फिर भी त्यागी यदि परिणाम मलीन रखें तो उन्हें निगोद में भी जगह न मिलेगी अर्थात् निगोद ही उन्हें शरण होगा या अन्य दुर्गति ।

卐 ॐ 卐

५–२७३. अलिप्त रह कर शुभोपयोगी रहो अन्यथा शुद्ध व शुभ दोनों से च्युत रहोगे ।

卐 ॐ 卐

६–१२. शुभोपयोग का साधन संस्था, शिष्यगण, सहवासी जन भी मेरी ही कल्पना से संक्लेश में निमित्त हो जाते हैं । अपने को सावधान रखो ।

卐 ॐ 卐

७–८०४. साधु, परमात्मा, ज्ञान व ज्ञानी की भक्ति तथा करुणा भाव ये शुभोपयोग है । पांच इन्द्रियों के विषयों का सेवन, हिंसा झूठ चोरी कुशील तृष्णा के परिणाम ये अशुभोपयोग हैं, अशुभोपयोग दुर्गति का कारण है उस की निवृत्ति में शुभोपयोग आदरणीय है ।

卐 ॐ 卐

८-८७४. आत्मन् ! अशुभोपयोग से तो हटो, अशुभोपयोग तो किसी भी प्रकार किसी भी सुख का कारण नहीं, और जब तक शुद्धोपयोगी न होओ तब तक शुभोपयोगी बनो, कुछ न कुछ (जाप, वंदना, सत्संग, स्वाध्याय, शास्त्र-श्रवण, धर्ममहोत्सव आदि) करते रहो, किन्तु लक्ष्य शुद्धोपयोग का ही रखो।

卐 ॐ 卐

९-८७५. शुद्धोपयोग के लक्ष्य से हटा हुआ आत्मा धर्म-मार्ग पर नहीं, चाहे वह सदा व्यवहारधर्मरूप शुभ उपयोग में रहता हो।

卐 ॐ 卐

१०-८७६. अशुभोपयोग तो विष ही है और शुद्धोपयोग अमृत ही है परन्तु शुभोपयोग विष भी है और अमृत भी है अर्थात् नियत अमृत (शुद्धोपयोग) के स्थान को देखता हुआ शुभोपयोग अमृत भी है तथा नियत अमृत को न देखता हुआ शुभोपयोग भी विष है। रागद्वेष-रहित ज्ञान की स्थिति की भावनाकरो, सर्व सिद्धि होगी।

卐 ॐ 卐

११-९१४. शुद्धोपयोग की भावना रूप शुभोपयोग में ध्यान तो खंडरूप व आत्मा का अशुद्ध (सापेक्ष) परिणमनरूप

शुभोपयोगमय पर्याय है परन्तु ध्येय अखंड व शुद्ध है, अखंड शुद्ध ध्येय के ही कारण शुभोपयोगरूप खंडता और अशुद्धता का अभाव होकर उपयोग अखंड और शुद्ध होजाता है।

卐 ॐ 卐

१२-६१५. देखो विचित्रता ! खंड में अखंड विराजमान है, अशुद्ध में शुद्ध विराजमान है फिर वह खंड और अशुद्ध कब तक रहेगा ?

卐 ॐ 卐

३१ उपकार

१-६७. हम दूसरे का उपकार करके भी अपनी ही वेदना मिटाते हैं व शान्ति स्थापित करते हैं, मेरे निमित्त से दूसरों का सुख या कल्याण हो जाय तो इसमें उन्हीं का पुण्योदय या भवितव्यता या विशुद्धि अन्तरङ्ग कारण है।

卐 ॐ 卐

२-७६१. अपकार अर्थात् बिगाड़ करने वाले को यदि बदला देना चाहते हो तो उपकार से दो, इसमें तुम्हारी विलक्षण विजय होगी।

卐 ॐ 卐

३-५६५. एक तो समाधिमार्गगामी पुरुष से स्वतः उपकार होता रहता है;...और दूसरा कोई उनके सदृश यशस्वी बनने की चाह वाला व प्रशंसा का लोभी या 'उपकार इस युग में हम से ही हो रहा' इस भाव से उपकार की धुन वाला अपनी करतूत करता है,...इन दोनों में महान् अन्तर है।

卐 ॐ 卐

४–५६६. समाधिमार्गगामी का उपदेश व आदेश आत्म-दर्शन आत्मज्ञान एवं आत्म चारित्र विषयक होता है।

卐 ॐ 卐

५–५६७. यश चाहने वाले का उपदेश आदेश होता तो रत्नत्रय विषयक किन्तु साथ ही साथ सामाजिक सेवा में प्रचुर भाग लेता रहता है।

卐 ॐ 卐

६–५६८. प्रशंसा का लोभी ऐसे भी कार्य कर देता है जिस में चाहे दूसरों का अपव्यय भी हो किन्तु उसका नाम आ जाना चाहिये।

卐 ॐ 卐

७–५६९. उपकार के अहङ्कारी के द्वारा अपने भक्तों के लिये समय समय पर ऐसी प्रेरणा मिलती रहती है जो तुम अमुक उपकार करो व उस कार्य मे लगा देने के योग्य प्रशंसा भी की जाती है।

卐 ॐ 卐

८–३४६. किसी के आदर्श सावित करने का भी ध्येय नहीं रहता फिर भी पर की प्रसन्नता के अर्थ कार्य करने की प्रकृति रहती, वहां भी आत्मरक्षा नहीं, यदि कर्तव्य कर अविवादपूर्वक जीवन गुजारने का ध्येय इस अनित्य जीवन में

है तव यह असत् मार्ग नहीं परन्तु ध्रुव जीवन का भी लक्ष्य साथ हो।

卐 ॐ 卐

९–२०७. परमात्मा या शुद्धात्मा का ध्यान कराने वाली कल्पना यद्यपि आत्मस्वभाव नहीं है तथापि इसकी उपकारशीलता को धन्य है जो यह कल्पना मुझे अमृत का पान करा कर अमर कर देगी और स्वयं राग का अशन न मिलने से भूखी रह कर अपना विनाश कर लेगी।

卐 ॐ 卐

१०–२८७. परोपकार का फल भी स्वोपकार है अतः परोपकार वहीं तक ठीक है जहां तक स्वोपकार में वाधा न आवे।

卐 ॐ 卐

११–२७८. पशुवों का चाम तो मरने पर भी काम आता, तेरे चाम का क्या होगा ? अरे ! जब तक आरोग्य है दीन दुखियों की सेवा किये जावो और महापुरुषों का वैयावृत्य किये जावो।

卐 ॐ 卐

३२ चिन्ता

१–७३. जगत् न अपने अनुकूल हुआ और न होगा इसलिये किसी के प्रतिकूल होने पर चिन्ता करना व्यर्थ है व पाप का बंधक है।

卐 ॐ 卐

२–२६६. आगामी काल की चिन्ता सम्यक्त्व का अतिचार है, अतः—क्या होगा–यह भय मत करो और न अति-भविष्य के प्रोग्राम बनाओ, वर्तमान परिणाम पर ध्यान दो।

卐 ॐ 卐

३–३११. जो तुम्हें कोई चिन्ता हो तब अपने ज्ञायक स्व-भाव का चिन्तवन करो—जो अखड और अविनाशी है, इसके ध्यान के प्रताप से तत्काल चिन्ता नष्ट हो जाती है।

卐 ॐ 卐

४–३६६. देह तो बड़े प्रयत्न से मेटने पर भी मुश्किल से मिटता, इसकी रक्षा की क्या चिन्ता करना, अपने कर्तव्य में लगे जावो।

卐 ॐ 卐

५-४२०. समतासुधापान के अर्थ क्षेत्र काल, साधन, अर्थ की क्या चिन्ता करते ? जहाँ बैठे हो वहीं अपने द्रव्य को निहारो, तुम में न पर का प्रवेश है और न पर में तुम्हारा प्रवेश है, इतने ही मात्र हो व रहोगे, विपत्ति तो परद्रव्यगतबुद्धि है, सर्व ख्याल छोड़ो और सुखी हो लो।

卐 ॐ 卐

६-५१७. "प्रत्येक वस्तु केवल अपने स्वरूप से रहे तब सुन्दर है" इस न्याय से आत्मा यदि धन से रहित हो जाय या जन से रहित हो जाय, अकेला रह जाय या कोई उसे न समझे व न माने तो इसमें खराबी क्या आई ? प्रत्युत तत्त्वपथ पर जाने के लिये उसे अनुकूल (विविक्त) वातावरण मिलने से आत्मीय सुख शान्ति पा लेने का सुन्दर अवसर मिल गया, अतः उक्त अवस्थायें यदि हो जाँय तब अपने को धन्य ही समझे; हीन समझना या चिन्तित होना मूर्खों का कार्य है।

卐 ॐ 卐

७-६२७. धार्मिक समाचार (वर्णन) के अतिरिक्त अन्य बात लिखना या बोलना राग व चिन्ता के कारण है।

卐 ॐ 卐

८-७१७. जो पुरुष अपने पद के विरुद्ध कार्य न करेगा वह

निःशल्य और प्रसन्न रहेगा।

卐 ॐ 卐

९-७१८. शारीरिक कोई कष्ट नहीं उसे सह लो शारीरिक कष्ट से आत्मा की हानि नहीं, शरीर की भी विशेष क्षति नहीं परन्तु मानसिक व्यथा से आत्मा और शरीर दोनों की हानि है।

卐 ॐ 卐

१०-८७७. किसी भी परिस्थिति में होओ, आत्मा के एकाकीपन को जानकर प्रसन्न रहो, चिन्ता कभी मत करो। चिन्ता चिता से भी भयंकर है, चिता तो मृतक को जलाती है परन्तु चिन्ता तो जीवित को जलाती रहती है अत्यन्त संक्लेश पैदा करती है। आत्मन्! जब कोई विपदा आवे आत्मस्वरूप को देखकर आत्मा के ही पास बसो; जगत तेरे लिये कुछ नहीं है।

卐 ॐ 卐

२२ संतोष

१–२६७. जबरदस्ती मनाई गई बात से वक्ता और श्रोता दोनों को लाभ नहीं अतः कोई मेरी बात मान ही जावे ऐसा असंतोष मत करो।

卐 ॐ 卐

२–३१६. किसी से भी सब लोग खुश नहीं हो सकते अतः अपने संतोष से संतुष्ट रहना बुद्धिमत्ता है।

卐 ॐ 卐

३–५५४. आत्मन् ! तूने ऐसी मोहमदिरा पी कि संतोष करना तो आजतक सीखा ही नहीं यदि इष्ट वस्तु मिली या इष्ट कार्य हुआ तो उससे आगे फिर बढ़ने लग जाता! यदि तू ऐसा सोचे कि अमुक कार्य होने के बाद एकदम निवृत्तिमार्ग में लगूंगा तो यह विकल्पमात्र है इसका प्रबल प्रमाण यह है कि अब तक भी इस ढचरा में निवृत्त नहीं हो सका।

卐 ॐ 卐

४–६४२. अपनी ही अज्ञानता से दुखी होते हो, दुखी करने

वाला अन्य कोई नहीं है, अपने आप से बात करो इष्ट अनिष्ट कल्पना हटा लो इस उपाय से सुखी हो जाओगे, अन्य चेष्टा में चाहे करोड़पति होजाय या लोकमान्य बन जाय किन्तु शांति संतोष नहीं पा सकता ।

卐 ॐ 卐

५–८०५. असतोष ही दरिद्रता है, दरिद्रता के विनाश का उपाय संतोषभाव ही है ।

卐 ॐ 卐

६–८२०. संसार में सार क्या है ? जिसके लिये असंतोष किया जाय ।

卐 ॐ 卐

७–८२५. दूसरे की स्वच्छन्द प्रवृत्ति से असंतुष्ट होने की आदत न डाल कर अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति से असंतुष्ट रहो, अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का असंतोष संतोष का कारण होगा ।

卐 ॐ 卐

८–८२७. जो सबसे बड़ा और मालिक बनना चाहेगा वह संतोष नहीं पा सकता ।

卐 ॐ 卐

९–८४१. जहां संतोष है वहां चैतन्य भगवान् के दर्शन हैं

और जिसने चैतन्य प्रभु का दर्शन किया वहां संतोष है।

卐 ॐ 卐

१०-२४६. शुद्धात्मा के अनुभव में अहंता और ममता का विनाश होता और शुद्धात्मा का अनुभव भेदविज्ञान के अनंतर होगा अतः जब तुम्हें परिणाम का ध्यान रहे तब समझो यह विभाव है उसमें संतोष मत करो, तुम्हारा तो स्वभाव ज्ञायकभाव है।

卐 ॐ 卐

११-८६३. मनुष्य की तृप्ति तो त्याग से ही हो सकती है, परसम्पर्क तो असंतोष का वातावरण है।

卐 ॐ 卐
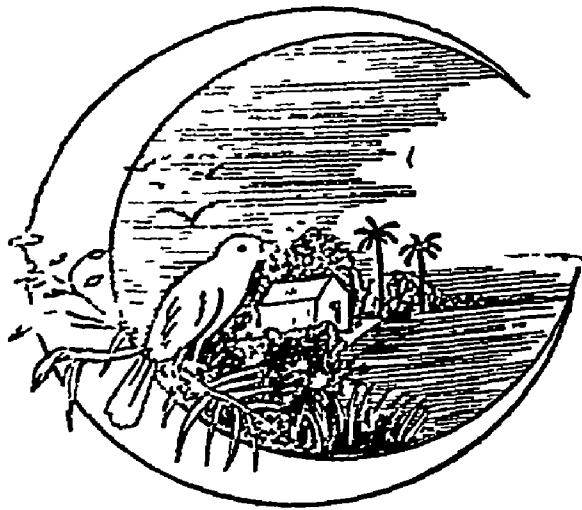
३४ पुरुषार्थ

१-२६. वीर अपनी प्रतिज्ञा को निभाता है, दीन प्रतिज्ञा से च्युत हो जाता।

卐 ॐ 卐

२-२६६. मोक्षमार्ग पुरुषार्थ से ही सिद्ध होता क्योंकि मोक्ष कर्म के उदय से याने भाग्य से नहीं होता, किन्तु कर्म के अभाव से सिद्ध होता अतः परमात्म गुण स्मरण या आत्मस्वरूपलीन पुरुषार्थ किये जाओ, अन्य चिंता या शंका मत करो।

卐 ॐ 卐

३-४०१. मनोहर! तुम ऐसा पुरुषार्थ और भावना करो जो मेरी उपयोगभूमि पर विषय कषाय राग विरोध का अधिकार न होने पाये, अपने उपयोग को निरापद सोचो और बनाओ।

卐 ॐ 卐

४-४१४. हे सुखैषी! कुछ मत सोचो, कुछ मत बोलो, कुछ मत करो क्योंकि अनाकुलतारूपसुखान्वित अलौकिक गम्य

वह सार शरण तत्त्व सोचने बोलने करने की दशा में अलभ्य है सहज विकसित है यदि कुछ करना शेष कहा जा सकता है तो यही कि क्रिया रूप उल्टा पुरुषार्थ मत करो, सुख न पर में हैं, न पराधीन है वह तो निज और निज के आधीन है, जानने के अतिरिक्त कुछ न करने रूप सीधा पुरुषार्थ करो ।

卐 ॐ 卐

५–४३६. मार्ग तो यह है कि जो तुमने समझा उसे अन्य की चिन्ता से दूर होकर कर ही डालो, पर पदार्थ की उधेड़ बुन में क्यों समय खोते हो ? भगवान् के ज्ञान में जो झलका वह होकर ही रहेगा तुम्हारे सोचने से क्या होता ? तुम तो अपने सम्बन्ध में यह सोचो कि मेरा स्वभाव ज्ञान दर्शन है सर्व से भिन्न हूं केवल का कर्ता भोक्ता हूँ ।

卐 ॐ 卐

६–५१८. मुख्य कर्तव्य बुद्धिगत रागद्वेषरहित परिणमन का अनुभव करना है, इसमें जब न रह सको तब तत्त्व चिन्तन में लग जाओ इसमें जब न रह सको तब स्वाध्याय में लग जाओ, इसमें जब न रह सको तो सत्समागम में चर्चा करो इससे भी विराम पाने पर समाज हित-

कारी कार्य में सहयोग देने लगो, पर बेकार कभी मत बैठो।

卐 ॐ 卐

७-८०६. पुरुषार्थ का अर्थ ही यह कहता है—जो आत्मा का हित रूप परिणमन है वह पुरुषार्थ है; पुरुष अर्थात् आत्मा का अर्थ अर्थात् प्रयोजन (हित)। इससे सिद्ध है—कि लौकिक कार्यों का प्रयोग यथार्थ पुरुषार्थ नहीं है।

卐 ॐ 卐

८-८०७. कोई उद्योग न करना ही शत्रु है; अनुद्योगी सुख शांति से वञ्चित रहता है।

卐 ॐ 卐

९-८१०. तुम अपने को जानते हो न! तथा जैसा तुमने अपने स्वभाव को समझा वैसे जो पवित्र हो चुके हैं उन्हें भी समझते हो न!...यदि हां...तो अब तुम कुछ भी न जानो और कोई तुम्हें भी न जाने; तेरी कोई हानि नहीं; बस, जैसा समझा वैसा होने की धुन में लगो अर्थात् पुरुषार्थ करो।

卐 ॐ 卐

१०-८४. पुरुषार्थ बिना कोई जीव एक क्षण नहीं रहता चाहे सीधा पुरुषार्थ करे या उल्टा, क्योंकि पुरुषार्थ याने

वीर्य गुण (अवस्थावृत्त) आत्मा का गुण है, गुण का अभाव होने पर आत्मा गुणी का भी अभाव हो जाता।

卐 ॐ 卐

११-८५. पुरुषार्थ कर्माधीन नहीं; क्योंकि वह आत्मगुण है; कर्म के उदय में वह गुण विकृतरूप परिणमता है और कर्म के अभाव में स्वभाव के अनुकूल परिणमता है।

卐 ॐ 卐

१२-८६. जो पुरुषार्थ का महत्त्व स्वीकार नहीं करते उन्हें सांसारिक कार्यों में भी पुरुषार्थ छोड़ देना चाहिये, यदि ऐसा करे तब वह मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ है, यदि न करे तो लोमड़ी जैसे खट्टे अंगूर हैं।

卐 ॐ 卐

१३-६२. जो भवितव्य पर विश्वास कर पुरुषार्थ करना छोड़ देते हैं उन्हें भवितव्य पर विश्वास नहीं क्योंकि भवितव्य में फल और पुरुषार्थ दोनों हैं, फल और पुरुषार्थ दोनों की भवितव्यता मानने वाला भवितव्यता का विश्वासी कहा जा सकता।

卐 ॐ 卐

३५ स्वतन्त्रता

१–६५. मैं स्वार्थ के चाहने में या करने में स्वतन्त्र व समर्थ हूं, पदार्थ तो मैं चाह भी नहीं सक्ता न कर भी सक्ता। इसमें कोई ग्लानि की बात भी नहीं कि मैं स्वार्थार्थी या स्वार्थकारी हूं, यह तो वस्तु का स्वरूप है, किसी भी पदार्थ के गुण अन्य पदार्थ के गुण में संक्रान्त नहीं होते।

卐 ॐ 卐

२–२०१. यदि तुम्हें स्वाधीनता पसन्द है तो दूसरों को भी कभी आधीन रखने का प्रयत्न मत करो अन्यथा पछताओगे क्योंकि कोई भी प्राणी इच्छा के विरुद्ध बात बहुत दिन तक सहन नहीं कर सक्ता तब वह सत्याग्रह के संग्राम में आवेगा और उसी की विजय होगी।

卐 ॐ 卐

३–३५२. तुम्हारी चेष्टा का फल तुम्हीं में है और कारण भी तुम्हीं में है उसे जानो और ज्ञानमात्र का आश्रय कर

उसे नष्ट करो।

卐 ॐ 卐

४-३५६. स्वाधीन कार्य शांति में अधिक सहायक है सत्समागम व सेवा पराधीन है स्वाध्याय बहुशः स्वाधीन है।

卐 ॐ 卐

५-३८१. यदि प्रोग्राम बनाते ही हो तब केवल मनुष्य जीवन का मत बनाओ, तुम स्वतन्त्र अविनाशी द्रव्य हो सदा का याने जब तक भवधारण शेप है या अप्रमत्त दशा नहीं हुई तब तक का आत्मार्थ प्रोग्राम बनाओ, वह प्रोग्राम अहंता ममता संकल्प विकल्प का त्याग है।

卐 ॐ 卐

६-४५३. स्वतन्त्रता प्रत्येक द्रव्य का सद्भाव सिद्ध अधिकार है अतः प्रत्येक आत्मा स्वतन्त्र हैं तथा जो राग अवस्था में परतन्त्र होता है वहां भी वह स्वतन्त्रता से परतन्त्र होता है।

卐 ॐ 卐

७-५८२. कौन किसका क्या चाहता है ? कोई किसी का कुछ चाह ही नहीं सकता क्योंकि सर्व स्वतन्त्र द्रव्य हैं और स्वतन्त्र परिणाम और वह भी खुद ही में।

卐 ॐ 卐

८–६५८. जैसे जाल में बँधा हुआ पक्षी बँधा ही है स्वतंत्र नहीं इष्ट विहार भी नहीं कर सकता इसी प्रकार ज्ञानी भी है तो भी यदि विषय कषाय में बँधा हुआ है तब बँधा ही है स्वतन्त्र नहीं है और न सुख में विहार कर सकता है।

卐 ॐ 卐

९–६६३. निरपराध मृग पासी में पड़ा है विवश है कोई सहाय नहीं इसी तरह यह ज्ञानी आत्मा विषय कषाय की पासी में पड़ा है पराधीन होता है कोई सहाय नहीं हो सक्ता, खुद ही विज्ञान बल से विषय कषाय से निकल जाय तो स्वतन्त्र होकर सुखी हो जायगा।

卐 ॐ 卐

१०–६९०. अपनी स्वतन्त्रता स्वीकार किये बिना आत्मीय अनंत आनन्द नहीं मिल सकता।

卐 ॐ 卐

११–७१९. घर छोड़ा, आराम छोड़ा, आगमज्ञान किया, श्री कुंदकुंदाचार्यादि के शास्त्रों का अध्ययन किया फिर किसी की प्रशंसा में किसी चीज के देने में किसी के या धनवानों के आधीन बने तो धिक्कार है उस जीवन को।

卐 ॐ 卐

१२–८१५. विषयों में, प्रतिष्ठा में, बुद्धि का न फँसना ही स्वतन्त्रता है और स्वतन्त्र ही तत्त्वतः सुखी है।

卐 ॐ 卐
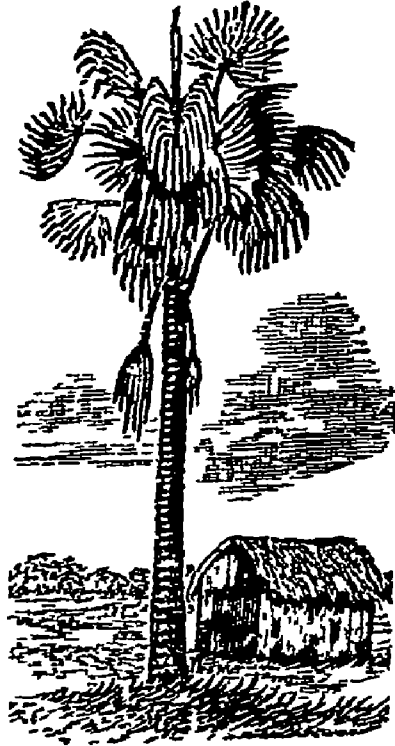
३६ धर्मिसेवा

१–३१०. जिसने मान का मर्दन कर दिया हो वे ही बड़-भागी वैयावृत्य कर सकते हैं।

卐 ॐ 卐

२–४०६. त्यागियों के रहने योग्य वह स्थान है जहां केवल मुमुक्षों पुरुषों का ही प्रायः गमानागमन व निवास हो। स्त्री, बालक, बालिका, कामी आरम्भी पुरुषों का निवास स्थल तो दूरतः हेय है। साधर्मियों को योग्य स्थान में ही आवास करना व कराना चाहिये।

卐 ॐ 卐

३–४०६. सामायिक करने के योग्य स्थान ये हैं— मंदिर जी, नगर के अंत का कोलाहल रहित मकान, वन, उपवन, धर्मायतन, गृहस्थशून्यगृह, ऐसे ही स्थानों पर सामायिक करना चाहिये व साधर्मियों के सामायिक के योग्य स्थान व वातावरण का प्रयत्न करना चाहिये।

卐 ॐ 卐

४–८३. प्रतिकूल कारण मिलने पर भी जो चरित्र व समता

से च्युत नहीं होते वे दृढ़प्रतिज्ञ धर्मवीर कहलाते हैं उनके साथ की उपासना से आत्मबल के विकास में उत्साह होता है।

卐 ॐ 卐

५-७६१. धर्म में अनुराग हुए बिना धर्मसेवा नहीं हो सकती और धर्मदृष्टि बिना संसार से पार होने का पात्र नहीं हो सकता।

卐 ॐ 卐

६-७६२. जिसकी चेष्टा से अहित हो वह धर्मी नहीं, धर्मी की चेष्टा किसी के अहित के लिये नहीं होती। ऐसे धर्मी को देखकर जिसे प्रमोद न हो प्रत्युत मात्सर्य हो उसका भवितव्य खोटा है।

卐 ॐ 卐

७-८१३. जो निर्मल परिणामों से अपने आप का अवलोकन करते हैं उन्हें मित्रों की कोई आवश्यकता नहीं; वही पुरुष यथार्थ धर्म के अधिकारी हैं और उनकी सेवा अलौकिक दर्शन का कारण है।

卐 ॐ 卐

८-८१४. धर्मात्मा पुरुष ही सच्चे मित्र हैं क्योंकि उन्हें संसार, शरीर भोगों से वैराग्य होने के कारण उनके

मायाप्रपञ्च नहीं रहता और उनकी प्रवृत्ति सर्व के हित-रूप होती है।

卐 ॐ 卐

९-९०४. धर्मिसेवा भी एक स्वसेवा है, क्यों ?...धर्मी महात्मा के प्रशम संवेग आदि गुणों के आश्रय से भावित स्वगुण के अनुराग से होने वाली चेष्टा अशुभोपयोग को तिलाञ्जलि देती है जो कि दुःखमय ही है और वीतराग परिणति को पुष्पाञ्जलि देती है जो कि सहजानन्दमय है।

卐 ॐ 卐

१०-९०५. आत्मन्! देख...भले में सभी सेवक से होजाते हैं परन्तु विपदा उपसर्ग में धर्मिवत्सलों की परीक्षा होती है। एक बार यदि भली स्थिति में धर्मात्मा की सेवा न कर सको न सही परन्तु धर्मी पुरुष पर कोई भी विपदा आने पर तुम वहां उसके ही से बन जावो; हित प्रिय वचनों से वैयावृत्य से धर्मी के उपसर्ग को दूर करने में ही समय लगा दो; उस समय वही तेरा धर्म है। धर्म तो मानसिक व तत्त्वतः आत्मीय बात है धर्म तेरा सब जगह सुरक्षित रहेगा।

卐 ॐ 卐

३७ धर्म

१-२३२. ममेदं रूप संकल्प को मोह व हर्ष विषाद आदि को क्षोभ कहते है, और मोहक्षोभरहित परिणाम को धर्म कहते हैं, इसका फल निराकुलता (आत्मशांति) है, सो यह फल धर्म के काल में ही तत्क्षण प्राप्त होता है अतः यह सिद्ध हुआ कि धर्म वही है जिसका फल नियम से तत्काल मिल ही जावे; वह धर्म नहीं जिसे आज करे और फल बाद में मिले।

卐 ॐ 卐

१-२३३. पुण्योदयजन्यसम्पत्ति धर्म का फल नहीं, रागादि के कारण जो शुभोपयोग होता है जो कि धर्म की कमी है उसका फल है।

卐 ॐ 卐

-६०७. मानवधर्म प्रवृत्तिपरक है आत्मधर्म निवृत्तिपरक है, अपने को मानव मानना आत्मस्वरूप को खोना है और अपने को ज्ञायक मानना आत्मस्वरूप की सिद्धि

करना है; मानवधर्म में लौकिक उपकार की मुख्यता है और आत्मधर्म में परमार्थ निर्मलता की मुख्यता है, मानवधर्म पुण्यबंधक है और आत्मधर्म मुक्तिसाधक है, अतः आत्मधर्म परमधर्म है।

卐 ॐ 卐

४–६४४. धर्म ही आत्मा का शरण है किसी भी अवस्था में (सुख की या दुःख की अवस्था में) इसे मत भूलो।

卐 ॐ 卐

५–८१३. जो बिगड़ी हालत पर साथ दे वही सच्चा मित्र है. अच्छी हालत में तो सभी मित्र से हो जाते हैं। वास्तव में तो धर्म ही मित्र है।

卐 ॐ 卐

६–८१७. दूसरों को धर्म धारण करा देना तुम्हारे वश की बात नहीं; खुद धर्मधारण करना तेरे वश की बात है। जो तेरे वश की उत्तम बात है उसे करने में देर मत कर।

卐 ॐ 卐

७–८५१. जिसका चित्त धर्म में नहीं वह मृतक ही तो है, न उससे स्व को लाभ न उससे पर को लाभ।

卐 ॐ 卐

८–८६९. धर्म—धर्म क्या किसी स्थान विशेष पर है?

धर्म क्या किसी पुरुष के पास है ? धर्म क्या किसी उत्सव में है ? धर्म तो आत्मा की वीतराग परिणति है वह अपनी ही परिणति है अतः धर्म को अपने में देखो।

卐 ॐ 卐

९-८७०. धर्म का स्वरूप जाने बिना जहां चाहे धर्म को ढूंढने की परेशानी हो जाती है—अरे ! कुछ समय यथार्थ स्वरूप को जानकर अधर्म परिणति (कषायभाव) से दृष्टि हटाकर आराम से ठहर जा फिर जान ले—धर्म क्या है ?

卐 ॐ 卐

१०-९०८. धर्म वह है जो संसार के दुःखों से छुड़ा देवे; दुःख है आकुलता !—वह होती मोह रागद्वेष से; तब... यही तो सिद्ध हुआ कि मोह रागद्वेष न करना धर्म है अथवा मोह रागद्वेष ही दुःख स्वरूप हैं, तब...यही तो सिद्ध हुआ कि दुःख न करना धर्म है। तू दुःख और सुख का सत्य स्वरूप समझले-सब मार्ग ठीक हो जायगा।

卐 ॐ 卐

३८ अध्यवसान

१–३७६. भेदविज्ञान का उदय रागादि की निवृत्ति करता हुआ होता, अतः यदि अपने सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान का निर्णय करना हो तो रागादि से हटे रहने वाले परिणाम से करो। अध्यवसान ही कल्याण का घातक है मोह रागद्वेषादि मलिन परिणामों को अध्यवसान कहा गया है।

卐 ॐ 卐

२–४४६. तुम्हारे दुःख का मूल तुम्हारा मोह राग और द्वेष है अतः मोह राग द्वेष को खोजो और आत्मस्वभाव के चिन्तन द्वारा उन परिणामों से दूर रहने का प्रयत्न करो, दुःख की शान्ति के अर्थ अन्यपदार्थ पर आजमाइश मत करो।

卐 ॐ 卐

३–४५२. चाहे धनी हो या निर्धन चाहे विद्यावान् हो या, मूर्ख चाहे प्रतिष्ठित हो या अप्रतिष्ठित सभी अपना समय ही बिता रहे हैं, केवल उनका ही कार्य धन्य है जो अर्ह-

ता ममता आदि विकारों से दूर है।

卐 ॐ 卐

४–४६२. कितने इष्ट वियोग, अनिष्टसंयोग आदि आपत्तियां तुमने पार की, उनमें विह्वल हुए और उस समय क्या और किस प्रकार आत्मार्थ विचारा था अब किसी बात को इष्ट बनाकर फिर वियोग व आपत्ति का क्लेश मिलाना उचित नहीं।

卐 ॐ 卐

५–४६३. जितना समय रागविरोध से दूर रहने में बीते उतना तो सफल व सुख के उपाय में लगा हुआ मान और जो राग विरोध में बीते चाहे उसमें तुम प्रसन्न भी हुए हो उसे बेकार व अपवित्रता में बहा हुआ मान।

卐 ॐ 卐

६–५२१. किसी वस्तु की चाह करना अज्ञानता है, सर्व पदार्थ अपने से न्यारे हैं, फिर उनके संग्रहादि की जबर्दस्ती से आत्मा का क्या हित है?...मोही प्राणी घोर दुःखी है...बाह्य में उपयोग लगाना ही दुःख है...वस्तुतः तो अमूर्त आत्मा को कौन पीड़ित कर सकता? सर्व मोहादिविकार का ही क्लेश है।

卐 ॐ 卐

७–६७४. परिचय के झमेले में आत्मदृष्टि नहीं रहती, आत्म-बल का प्रयोग कर अपरिचित बने रहने में आत्मा को हानि नहीं, आत्मा की हानि राग द्वेष बसा लेने से है।

卐 ॐ 卐

८–३७३. जो तुमने पूर्व पाप उपार्जित किया वह तुम्हें ही तो भोगना है शांति से सहो अथवा उस दशा से भी अपने स्वभाव को भिन्न मानकर निराकुल रहो अथवा सोचो–ये कर्म अपना समय पाकर विदा हो रहे हैं, यह लाभ ही की बात है अब कर्तव्य है जो राग द्वेष न करो ताकि नवीन बंधन न हो।

卐 ॐ 卐

९–४४९. जीवन उन्हीं का सफल है जो जितेन्द्रिय और जितमोह बन जाते हैं।

卐 ॐ 卐

१०–२३४. यदि कर्मबंध नहीं चाहते, देह प्राप्ति नहीं चाहते पौद्गलिक प्राण नहीं चाहते तो इन सबका मूल जो मोह व रागभाव है उसे छोड़ो।

卐 ॐ 卐

३६ मोह

१-३१५. परिचितव्यामोह संसार का मूल है सब से पहिले इसी को भेदविज्ञान से शिथिल करना मोक्षमार्ग का पहिला कदम है।

卐 ॐ 卐

२-४४८. आत्मबली वही है जो जिस वस्तु से अधिक मोह है उससे रागत्यागपूर्वक मुख मोड़ ले, इसके लिये अहंकार व अहंबुद्धि के विनाश की सर्व प्रथम आवश्यक्ता है।

卐 ॐ 卐

३-५१६. संसार के जाल में कब तक फँसा रहेगा, जब तक फँसा रहेगा तब तक दुखी रहेगा, अतः सर्व की ममता छोड़ो, अपना ध्यान करो, संसार में कुछ भी न किसी का हुआ, न होगा।

卐 ॐ 卐

४-६८३. दुःख में अनंतकाल व्यतीत करदिये, वह दुःख भी क्या है ? केवल ममता !...अपना कुछ होता है नहीं फिर...ममत्वभाव क्यों ? इस गलती का जो फल भोगोगे

उसको अकेला भोगना पड़ेगा, कोई सहायक नहीं होगा।

卐 ॐ 卐

५–६६१. जगत् में सर्व आत्मा अपने आप में ही परिणमन कर पाते हैं इसलिये कोई किसी का कुछ नहीं हो सकता व कुछ नहीं कर सकता, फिर भी प्राणी अनात्मीय को आत्मीय मान रहे हैं, यह सब मोह का नशा है इस कारण ज्ञानशक्तिमय भगवान् को दुःख का वेदन करना पड़ता।

卐 ॐ 卐

६–७२५. कर कौन रहा है मोह ? आत्मा तो ज्ञानस्वभाव है उसकी तो निज क्रिया जानना है,...ढांचा मोह करता नहीं वह जड़ है।

卐 ॐ 卐

७–७२६. मोह किससे किया जा रहा है ? आत्मा से तो कोई मोह करता नहीं उसे ठीक जानता ही मानता ही कौन है ? तथा ढांचे से कोई मोह करता नहीं, केवल ढांचे को तो जल्दी से जल्दी जलाने के लिये कोशिश होती है।

卐 ॐ 卐

८–७२७. कौन किससे मोह करता है ? मोह का वास्तविक

आधार व आश्रय ही कुछ नहीं मालूम होता, यहाँ तो ये सारा बिना शिर पैर के नाच हो रहा है।

卐 ॐ 卐

९-२३९. दूसरों को प्रसन्न करने की चेष्टा गाढ़ व्यामोह का फल है, अपने विशुद्ध भावों को उपार्जित कर स्वयं को प्रसन्न करो।

卐 ॐ 卐

१०-२१. जब तक मोह का लेश भी सत्त्व है तब तक आत्मा का उद्धार नहीं।

卐 ॐ 卐
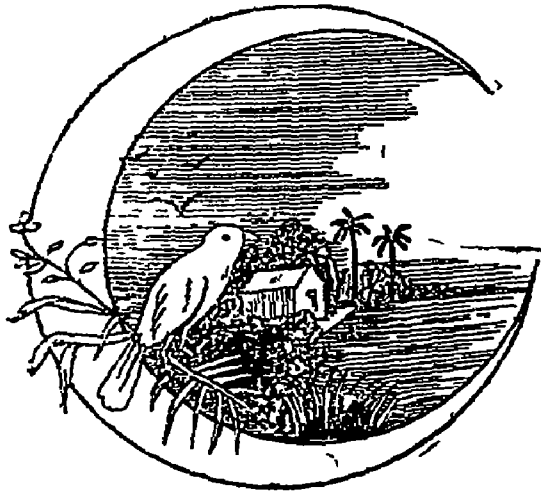
४० राग

१–२३४. जब भी तुम्हें क्लेश हो तब अपने अपराध पर दृष्टि डालो और सोचो–किस राग के कारण यह दुःख हो रहा है ? क्योंकि राग के बिना संताप नहीं होता।

卐 ॐ 卐

२–२३५. राग का विषय केवल बाह्य वस्तु नहीं किन्तु राग, राग में क्रोध मान माया लोभ में इच्छा में द्वेष विरोध में मिथ्यात्व आदि परिणामों में भी होता अन्यथा वह आत्मा इन परिणामों से विरक्त या असंतुष्ट होता और निराकुल स्वाधीन शान्त हो जाता।

卐 ॐ 卐

३–२६४. तुम किसी के नहीं और न कोई तुम्हारा है इसे बार बार विचारो और बाह्य से राग छोड़ो।

卐 ॐ 卐

४–२७१. जब तक राग रहेगा चाहे वह धार्मिक संस्था का भी क्यों न हो, निर्भय और निःशल्य नहीं रह सकोगे।

卐 ॐ 卐

५-३७२. जगत में जिसका जहां जो कुछ होता हो सो होओ परन्तु तुम राग कर आकुलित न होओ। हां! यदि बन सके तो उपकार का कर्तव्य कर दो और बाद में उस उपकार को भूल जावो।

卐 ॐ 卐

६-३८२ राग की पीड़ा राग से शान्त नहीं होती; खून का दाग खून से नहीं धुलता, उस पीड़ा की शांति का उपाय भेदविज्ञान है।

卐 ॐ 卐

७-३६४. राग ही दुःख है जब तुम्हें दुःख हो तब हमें दुःख है इसे मेटना चाहिये इस कल्पना के एवज में यह सोचो—यह राग है इसे मेटना चाहिये।

卐 ॐ 卐

८-३६४B. जो तुम्हें दुःख है वह राग की करामात समझो और उसे छोड़ो, राग छोड़े बिना सुखी न हो सकोगे।

卐 ॐ 卐

६-४४३. राग करके अब तक तो सुखी हो नहीं सका फिर भी तू बालू से तेल की आशा करता है।

卐 ॐ 卐

१०-४६१. राग का लेश भी आत्मा का अहित है; किसी

कार्य के करने में, प्रशंसा में, किसी के द्वारा की गई सेवा में, किसी के मधुर वचनों में भले ही सुखाभास हो परन्तु पूर्ण श्रद्धा व भावना करो—कि लेश भी राग आत्मा का अहित है।

卐 ॐ 卐

११-२५१. प्रयोजन न होने पर भी अपनी प्रकृति से विरुद्ध अन्यकृत कार्य देखा नहीं जाता, यह द्वेष भी रागमूलक है क्योंकि उसे नैमित्तिक प्रकृति (वैभाविक परिणति) से राग हुआ है; यदि उस द्वेषज दुःख से बचना चाहते हो तो नैमित्तिक परिणति रूप अपनी प्रकृति को हेय मान-कर उससे राग छोड़ो।

卐 ॐ 卐

१२-१२३. कर्म के फल में राग करने वाले को कर्म फल देवेगा ही अतः मुमुक्षु को कर्म के फल में राग नहीं करना चाहिये।

卐 ॐ 卐

१३-१०६. उतना भयंकर द्वेष नहीं जितना भयंकर राग है। द्वेष तो ऊपरी चोट से आघात करता परन्तु राग भीतरी और मुँदी चोट से आघात करता है, द्वेष भी

रागवश होता पर राग मूलतः द्वेष वश नहीं होता।

卐 ॐ 卐

१४–२२६. जब तक मेरे राग परिणाम है तब तक मैं पापी ही हूं (इसे बार बार सोचो)

卐 ॐ 卐
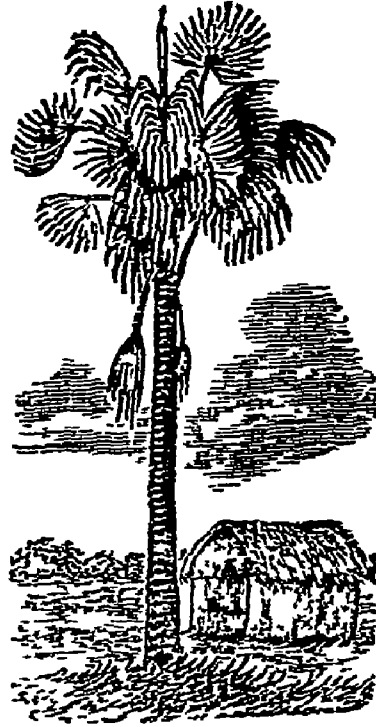
४१ लौकिक वैभव

१–३६३. जो भी वैभव संसार में दीखता है वह पहिले अनंतबार अनंत तीर्थंकर, चक्रवर्ती नारायण, महाराजों द्वारा भी भुक्त एवं पर द्रव्य होने के हेतु पच न सकने के कारण वान्त है अतः यह वैभव अरम्य और अविश्वास्य है।

卐 ॐ 卐

२–४१५. मनोहर! इस बात को कभी मत सोचो कि लोग क्या कहेंगे अथवा अमुक कार्य मैं बहुत दिन से कर रहा व सोच रहा इसे कैसे भुलाऊँ या त्यागूं सर्व माया है अस्थिर है अहित है।

卐 ॐ 卐

३–४१७. चेतन व अचेतन वाह्यपदार्थों के सम्बन्ध से ही दुःख उठाना पड़ रहा है इसलिये यदि क्लेश से बचना चाहते हो तो उनसे मनसा सम्बन्ध छोड़ो, अन्यत्वभावना का ध्यान करो।

卐 ॐ 卐

४-४१६. तुम जिस अर्थ की हानि व शंका में भीत एवं दुखी रहते हो उसकी हानि होने पर भी शोक रहित रहने रूप धीरता जब तक न पा लोगे सुखी हो ही नहीं सकते और उसका उपाय एक यह भी है कि मान ही लो—हानि हो चुकी—फिर जिस उपाय से सुखी हो सकते हैं उस उपाय को विकल्प ही समझा देंगे।

卐 ॐ 卐

५-४५६. किसी भी सामाजिक कार्य का आयोजन अध्यात्मयोगी को विडंबना है, स्वयं इच्छा करके न करे; यदि कोई करता हो और उसमें हित देखे तो समर्थन करके अपनी परिणति में चला जावे।

卐 ॐ 卐

६-४६८. ये वैभव भोगने में तो आ नहीं सकते केवल बुद्धिगत होकर पाप में निमित्त बनते हैं, भोगने में तो आते नहीं फिर बुद्धिगत ही क्यों करते? हटो और दूर रहो।

卐 ॐ 卐

७-४७६. लौकिक कार्यों में नरभव गमा देना महती मूर्खता है।

卐 ॐ 卐

८-४८२. दृश्यमान पदार्थ सब अस्थिर हैं, यहां हित का

लेश नहीं, हित का बुद्धिगत उपाय एकान्तवासी होकर स्वाध्याय, ध्यान व तप करना है; कमजोरी तो बनाने से बनती है व हटाने से हटती भी है।

卐 ॐ 卐

९–५०९. हिंसा झूठ चोरी व्यभिचार तृष्णा ये अनर्थ के मूल हैं जो इनसे बचा वह ही श्रेष्ठ है; लौकिक वैभव तो न किसी का हुआ और न होगा आत्महित ही सर्वोपरि है।

卐 ॐ 卐

१०–५१०. बाह्य तो बाह्य ही है, कभी भी निज नहीं हो सकता; अपने उपयोग में उन्हें स्थान मत दो; अरे दिखनेवाले भी सभी तुम्हारे जैसे मायामय क्षणिक हैं, दो दिन को थपड़ी बजा कर हा हा हू हू करके जैसे तुम किनारा कर जावोगे ये किनारा कर जावेंगे; कोई किसी का सहाय नहीं है; यह तो वैज्ञानिक बात है—हमारे परिणाम से सुख–दुख एवं संसार–मोक्ष है।

卐 ॐ 卐

११–५२०. दृश्य पदार्थ तो जड़ हैं वे तुझे आपत्ति कर सकते हैं?...और...अन्य आत्मा अन्य ही हैं वे तो मात्र स्वयं में ही परिणमन करते हैं अतः वे भी तुझे क्या

आपत्ति कर सकते हैं। आपत्ति तो मात्र इतनी ही है जो तेरी बाह्य पर दृष्टि है, इस बाह्यदृष्टि को हटा फिर सुख ही सुख है।

卐 ॐ 卐

१२-५६१. राग की आग में यह आत्मा भुन रहा है और संसार के ये दृश्य पदार्थ उस आग को बढाने के लिये ईंधन बन रहे हैं। आत्मन्! सोच यह सब कुछ तुम्हें जलाने के लिये राग आग का ईंधन है, इस ईंधन को बटोर कर खुद मत मरो।

卐 ॐ 卐

१३-२७६. तूने लौकिक जनों से विपरीत तथा सम्यक् त्यागमार्ग में कदम रखा है अतः लौकिकों का आराम, वैभव, अनुराग और मग्नत्व देख कर किञ्चित् भी विस्मय मत करो और न आदेयता की झलक डालो।

卐 ॐ 卐

४२ आशा

१—४१६. निज के अर्थ की तो बात क्या यदि पर के अर्थ भी पर की आशा छोड़ दोगे तब सुखी रहोगे और मनुष्य जन्म का फल पा लोगे अन्यथा वही काम करते करते मर जावोगे जो काम चिरकाल से करते आये लाभ की बात कुछ न हुई।

卐 ॐ 卐

२—४२१. धन परिवार के लोभ से अधिक दुर्जेय लोकेषणा (लोकों की दृष्टि में भले जचने की आशा) है; लोकेषणा का परिणाम दूर किये बिना लेश भी कल्याण नहीं है। लोकेषणा ही समता की प्रबल बाधिका है।

卐 ॐ 卐

३—४२८. हे आत्मन्! तुम सहजसौख्यमय हो; जब तुम अपने आप सुखी नहीं हो सक रहे तब क्या पर पदार्थ से सुखी हो जावोगे?

卐 ॐ 卐

४—६८६. दूसरे की आशा पर जीवन की निर्भरता मानने

वाला मनुष्य मुग्ध है।

卐 ॐ 卐

५–७०३. रे आत्मन्! तू तो स्वयं ज्ञानानंदमय है फिर शांति, सुख के लिये पर की क्यों आशा कर रहा है? जितने भी अनंत सिद्ध हुए हैं वे भी पहिले तुझ जैसे संसारी थे परन्तु स्वाधीन उपाय से-आत्मा में स्वयं रमण करने से अनन्त सुखी होगये।

卐 ॐ 卐

६–३१२. आशा–तृष्णा-का स्वभाव ही आकुलता है चाहे वह धार्मिक कार्य की भी हो अतः प्रत्येक कार्य में ज्ञाता द्रष्टा ही बने रहो।

卐 ॐ 卐

७–२८. गृहस्त रहना उतना बुरा नहीं जितना कि ब्रह्मचारी होकर गृहविषयक वाञ्छा करना बुरा है।

卐 ॐ 卐

८–८११. जब तेरा उपयोग किसी की कोई आशा नहीं करता तब जैसा धनी तैसा गरीब, विकल्प की आवश्यकता क्या? नैराश्य मय सुधासागर में मग्न रह कर शान्त और सुखी बनो।

卐 ॐ 卐

१६–८२१. जो विषयों की आशा के दास हैं वे सबके गुलाम बन जाते हैं, यदि गुलामी का दुःख नष्ट करना हो तो आशा का नाश कर दो।

卐 ॐ 卐

२०–८२२. अरी आशा तूने इतने पाप कराये, अब भी सन्तुष्ट हुई या नहीं ? यदि सन्तुष्ट हो गई तो अब तुम जाओ, यदि सन्तुष्ट नहीं हो सकती तो तुझे लाभ क्या ? जाओ।

卐 ॐ 卐

४३ धैर्य

१–३७०. ऐसी धीरता पैदा करो जो दूसरे की मन वचन काय की प्रतिकूल चेष्टा होते हुए भी अक्षुब्ध रह कर उसे समझा सको।

卐 ॐ 卐

२–४३६. यदि किसी ने मूर्ख कहा और उस मूर्ख शब्द को सुनकर हम अपने स्वभाव को छोड़कर क्षोभ में आगये तो हम उससे भी मूर्ख निकले; अतः कोई कुछ भी कहे हमें तो अपने ही धैर्य में निवास करना चाहिये।

卐 ॐ 卐

३–४८३. बाह्य पदार्थ के लाभ हानि से तुम्हारा लाभ हानि नहीं, अतः बाह्य परिणति से किञ्चित् भी हर्ष विषाद न करो, धीर व उपेक्षक बनो।

卐 ॐ 卐

४–५२८. अधीरता आत्मशुद्धि का शत्रु है, इसका पोषक ममत्व है, यह ममत्व ही जगत को नचा रहा है, न करने

योग्य काम करा रहा है, न कहने योग्य वचन कहा रहा है, न सोचने योग्य बात सोचाया करता है।

卐 ॐ 卐

५–५३३. काम क्रोध मान माया लोभ इनमें किसी एक के भी तीव्र उदय में चित्त बलहीन होजाता है और फिर प्रत्येक कार्य में अधीरता रहती है, अतः उक्त पांचों शत्रुओं पर भेदविज्ञानमय शस्त्र का प्रहार कर।

卐 ॐ 卐

६–५३८. राग के बाहुल्य से होने वाले इष्टसिद्धि के अभाव से जन्य शोक के कारण ही दिल कमजोर और अधीर हो जाता है जिससे मनुष्य बहुत संक्लिष्ट व परेशान हो जाता है और इस परेशानी को मिटाने के लिये पर पदार्थ में कुछ करने का उद्यम करना चाहता है, परन्तु मूल कारण जो आत्मा में रागविकार है उसे समझता नहीं और न हटाना चाहता है।

卐 ॐ 卐

७–६७२. जो पुरुष कषायों से जितना दूर रहेगा वह उतना ही धीर व गंभीर होगा, कषायों के दूर किये बिना धीरता व गंभीरता नहीं आती।

卐 ॐ 卐

८-६७२. जो मनुष्य अधीर हैं वे दुःखी ही रहते हैं, धैर्य शांतिमार्ग पर विहार कराने वाला है।

卐 ॐ 卐

९-७६०. शीघ्रता में आकर जो तुमने सुना और माना है कहने मत लगो।

卐 ॐ 卐

१०-८१६. धैर्य शब्द ही यह बताता है—कि ज्ञाता द्रष्टा-पन की पूर्ण (अनन्त) सीमा को प्राप्त हो जावो। यथा—धैर्य=धीं बुद्धिं ददाति इति धीरः, धीरस्य भावः धैर्यम्=जो बुद्धि (ज्ञान) दे (प्राप्त करावे-विकसित करावे) वह धीर है धीर के परिणाम को धैर्य कहते हैं।

卐 ॐ 卐

४४ कल्याण

१-३५६. रागादिक की हीनता होना ही कल्याण है इसी का ध्यान रखो इसी का प्रयास करो, यही बुद्धिमत्ता है।

卐 ॐ 卐

२-५०३. ब्रह्मचर्य, विद्याभ्यास और विनय विद्यार्थियों की उन्नति के मूल हैं, यह ही सच्चा जीवन बनाने की त्रिपुटी है।

卐 ॐ 卐

३-५०६. रागद्वेष रहित आत्मा की परिणति होना ही आत्मा का उद्धार, कल्याण व सुख एव धर्म है सो वह आत्मा से पृथक् नहीं है, ऐसी आत्मा को, आत्मा, आत्मा के द्वारा, आत्मा के लिये, अपनी अशुद्ध परिणति से हट कर आत्मा में स्वयं करता है, अतः सुख के लिये अन्य सामग्री की खोज में व्यग्र होकर परतन्त्र मत बनो अपना उत्साह करो।

卐 ॐ 卐

४-५०८. भलाई का मूल सचाई है, चाहे आक्षेप हों या

विपत्ति आवे फिर भी यदि हर बात की सचाई रहेगी, नियम से विजय होगी और परमसुख का अनुभव होगा।

卐 ॐ 卐

५–५६१. किसी भी कार्य को पूर्ण करने के लिये संकल्प को दृढ़ता होना चाहिये, बार बार विचार करने से वह दृढ़ता आती है, यह भी काम हो वह भी काम हो या न हो अथवा हो ही आदि-विविध विचार ग्रस्त निर्बाध मार्ग पा नहीं सकता अतः यदि सुख चाहो तो अपना श्रेष्ठ लक्ष्य बनाने के लिये हित अहित का खूब विचार कर लो और जो हित-रूप हो उसके लिये दृढ संकल्प कर लो।

卐 ॐ 卐

६–५६३. त्यागी हुए तब समाधिभाव की सिद्धि के अतिरिक्त अन्य कार्य का लक्ष्य नहीं बनावो; लोग तो उद्धार परोपकार शुभोपयोग आदि शब्द कह कर राग की आग लगाकर अलग ही रहते हैं, जलना पड़ना है तुम्हें। यह सोचना भूल है कि निरन्तर ज्ञानोपयोग नहीं रह सकता रह सकता, इतना जरूर है—कभी मंद कभी तीव्र।

卐 ॐ 卐

७–६०३. चिन्तामणि तो चैतन्यमात्र का नाम है जिसके चिन्तवन से मनचाहे अर्थ की सिद्धि होती है, इस चैत-

न्यमात्र विशेष्य को तो लोग भूल गये और चिन्तामणि विशेषण को आदेयता की दृष्टि से देखते रहे, अतः और किसी में चिन्तामणि की कल्पना होने लगी, कोई पृथक् चिन्तामणि है ही नहीं, अतः चैतन्यमात्र ही चिन्तामणि है उसी को हस्तगत करो फिर सर्व अर्थ की सिद्धि है।

卐 ॐ 卐

८-६-८६. आत्मा की रक्षा और भलाई इसी में है जो कुभाव पैदा न होने दे, वे कुभाव न अतिसंक्षेप से न अतिविस्तार से विभक्त किये जावें तो १० भागों में विभक्त होते हैं— जिन्हें प्रतीकार सहित लिखते है—

१—मन का विषय—अशरण संसार में ममता न करना और इस असार संसार में नामवरी न चाहना।

२—स्पर्शन का विषय—काम का कुभाव न करना और शीतादि से अपना बिगाड़ न मानना।

३—रसना का विषय—भक्ष्यपदार्थों में भी आसक्ति न करना तथा अहित बात न बोलना।

४—घ्राण का विषय—सुगंधित पदार्थ का ध्यान भी न करना।

५—चक्षु का विषय—रागवर्द्धक रम्य पदार्थ को देखने

का भाव न करना और कदाचित् दिख भी जावे तब दुबारा उसे देखने का भाव भी न करना न देखना ।

६-श्रोत्र का विषय—राग भरे गायन या शब्द सुनने का भाव भी न करना ।

७-क्रोध—गुस्सा न करना न किसी का बुरा विचारना ।

८-मान—सन्मान से न भलाई समझना न अपमान से बुराई समझना न अपनी प्रशंसा करना न पराई निन्दा करना ।

९-माया—छल कपट की कोई बात नहीं रखना ।

१०-लोभ—किसी भी पदार्थ का लालच नहीं करना ।

卐 ॐ 卐

९-६३३. यश अपयश से आत्मा की भलाई बुराई नहीं, अपनी निर्मलता और मलीनता से ही कल्याण और अकल्याण है ।

卐 ॐ 卐

१०-६४०. छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं ।

जह्मा तह्मा गच्छदु तहवि हु ण परिग्गहो मज्झ ॥...

पर पदार्थ किसी भी अवस्था को प्राप्त होओ उनसे आत्मा

का हित अहित नहीं; आत्माभिमुखता, आत्मज्ञान, आत्मचर्या से ही मेरा हित है।

卐 ॐ 卐

११-६७७. देह का सुखिया स्वभावी होना आत्मा का अहित करना है अथवा देह में आराम या गैर आराम की बात ही क्या है जिससे आत्मा को आराम् (शांति) मिले वह काम योग्य है। शरीर को सुखिया बनाने से प्रायः विभाव उमड़ते हैं और शीत उष्ण आदि परीषहों में रहने से प्रायः अशुभोपयोग नहीं होते प्रत्युत शुद्धोपयोग पर दृष्टि पहुँचती किन्तु ये परीषहें तहां तक ही होना चाहिये जहां तक वेदनाप्रभव आर्तध्यान का प्रारम्भ न हो।

卐 ॐ 卐

१२-६६६. लोगों ने कुछ कह दिया...कि ये अच्छे त्यागी हैं बड़े उपकारी हैं, इन महाराज के बाद यह हैं आदि शब्दों से तेरा हित होगा ? या सब का विस्मरण करके व सब की अपेक्षा करके विशुद्ध ज्ञानमय रहने में तेरा हित होगा ?

卐 ॐ 卐

१३-७१५. पापान्वित शोकातुर की बात मत सुनो, जो जैसी

बात सुनता है, देखता है विचारता है वह कालान्तर में उसके अनुरूप होजाता है इसलिये कल्याण की बात सुनो, देखो, विचारो, शोक व पाप की बात मत सुनो मत देखो मत विचारो ।

卐 ॐ 卐

१४-४३१. मान लो तुम्हें दुनिया का कोई मनुष्य नहीं जानता, तुम अकेले एक जगह पड़े हो, कोई चर्चा करने वाला नहीं है,...तो...ऐसी हालत तुम्हें पसंद है ? बुरी तो नहीं लगती ? यदि विषाद नहीं तो कल्याण के पात्र हो ।

卐 ॐ 卐
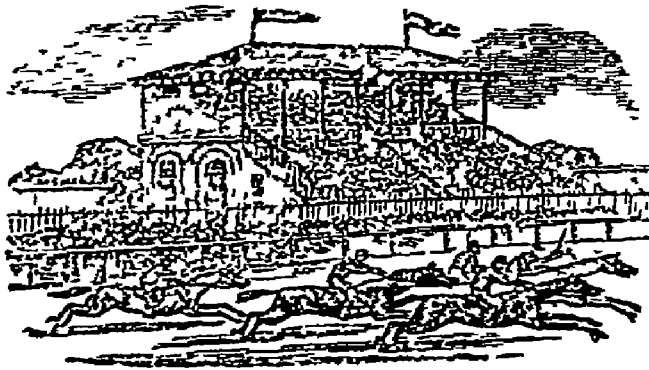
४५ उपेक्षा

१-२४३. मालूम होता है कि—

मर जाऊँ मांगूं नहीं अपने तन के काज।
पर उपकार के कारने नेक न आवे लाज॥

यह दोहा अपनी लाज व दीनता के छुपाने के वास्ते बना दिया गया है या इस दोहे से अपनी सफाई ही पेश की। वस्तुतः पर उपकार के अर्थ भी मांगने में लाज या दीनता या न देने पर संक्लेश आये, बिना रहता नहीं अतः निरपेक्षता ही उत्तम सुखमार्ग है।

卐 ॐ 卐

२-३०३. मनोहर! तत्त्वज्ञान का फल उपेक्षा है, उपेक्षा का फल शान्ति है, तुम्हारे जब तत्त्वज्ञान (भेदविज्ञान) प्रकट हुआ तब कोई शक्ति नहीं जो तुम्हें एकान्त में भी विचलित कर सके, कुछ समय धर्म्यध्यान के अर्थ एकान्त में भी बितावो, समागम सार्वकालिक ठीक नहीं, राग के साधन मत जुटावो, किसी की दृष्टि में भले बनने की

कोशिश मत करो। हाँ साधर्मी जन के मेल होने पर हित मित प्रिय व्यवहार करके अपने कर्तव्य का पालन करो।

卐 ॐ 卐

३–३७५. उत्तम भोजन वह कहलाता है जो शरीर में रोग न करे और न प्रमाद बसाये सो उपेक्षा भाव से शुद्ध किन्तु नीरस भी भोजन किया जावे तो उसमें वह गुण है अतः राग को जलाञ्जलि दो बहुत दिन इसके चक्र में आकर विषपान किया।

卐 ॐ 卐

४–३७६. भोजन करते समय यह सोचो कि जो भी वस्तु हो चाहे वह घृत दुग्ध फल शक्कर हो या नमक अन्न छाछ पानी हो सभी पुद्गल ही तो हैं, समान हैं, प्रत्युत नीरोगता का साधन होने से अन्न छाछ पानी आदि लाभदायक हैं अथवा संसार की पर्याय गुजारना है, वस्तुतः आत्मा का स्वभाव तो अनाहार है।

卐 ॐ 卐

५–३७८D. अनासक्ति की परीक्षा इष्ट अनिष्ट द्रव्य के लाभ होने में होती है।

卐 ॐ 卐

६–३९६. निज क्रिया का उद्देश्य निज ही है और फल भी निज ही है अर्थात् जो भी प्रयास किया जाता है वह शांति के अर्थ ही किया जाता है यदि वह प्रयास पर प्रतीक्षापूर्ण है तब उसका फल आकुलता है और यदि परनिरपेक्ष है तो उसका फल निराकुलता है, पहिले प्रयास में उद्देश्य के विरुद्ध फल है, दूसरे प्रयास में उद्देश्य और फल एक है।

卐 ॐ 卐

७–४२२. इस समय तुम जिस परिणाम में हो वह परिणाम व काल थोड़े ही समय में भूतकाल में सम्मिलित हो जायगा फिर किसमें लिप्त होना योग्य है? अपने निरपेक्षस्वभाव को देखो, केवल ज्ञाता रहो।

卐 ॐ 卐

८–४२३. संसार के दुखियों की ओर देख! कोई स्त्रीवियोगी है कोई पतिवियोगिनी है कोई रुग्ण है कोई गरीब है तथा जिनके पास धन आदि है वे किसी अन्य की चाह में हैं; जो भोगासक्त हैं उनके भोग नियम से नष्ट होने वाले हैं सार कुछ भी नहीं, सब की उपेक्षा करके अपने आप में लीन रहना ही सार तथा शरण है।

卐 ॐ 卐
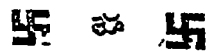
९—४६०. तुम यदि पशु या पक्षी वगैरह जिस किसी पर्याय में होते तो वहीं अपनी वासना बनाते इस पर्याय की वासना की गंध भी नहीं होती, वासना अध्रुव है...तुम तो ज्ञानमात्र हो...वासनारहित हो, वासना से मुख मोड़ो; यदि नहीं मोड़ पाते तो एक उपाय यह है कि कल्पना करो—मैं अन्य किसी भव में होऊँ तब तो यह कुछ भी नहीं है।

卐 ॐ 卐

१०—४७३. आत्मन्! तुम्हारी जो भावी है, होगा; तुम्हें उपयोग को विशेष व्यायाम कराना उचित नहीं अथवा वह व्यायाम भी होगा तुम्हें रुचि करना उचित नहीं।

卐 ॐ 卐

११—४९७. जब तुम विपदा या अपमान के अनुभव में व्याकुल हो रहे हो तब तुम इस बात को सोचो कि इस समय तुम हो कहां? स्वाभावदृष्टि में या बाहर? स्वभावदृष्टि में तो हो नहीं.. वह तो परमसुख का स्थान है! और बाह्यदृष्टि में तो ऐसा होता ही है, अनहोनी मत समझो, यदि इस दुख से बचना चाहते हो तो पर की उपेक्षा करके बाह्यदृष्टि से हटो।

卐 ॐ 卐

१२—५९४. नामवरी के लिये बढ़ने वाले विशिष्ट त्यागिजनों

के उदाहरण, प्रक्रियावलोकन तुम्हारे अहित में ही निमित्त हो सकते हित में नहीं अतः उनके उदाहरण व प्रक्रिया-कलाप की उपेक्षा ही करो।

卐 ॐ 卐

१३-३४०. किसी साधु या सत्पुरुष की मान्यता देखकर तुम चाहते हो मैं भी ऐसा होजाऊँ, यह अच्छी बात है परन्तु सोचो तो सही वह कैसा है? अरे-बाह्यडम्बर होते हुए भी वह उससे निरपेक्ष है उसके लिये वह क्या है? इसी तरह जब तुम वैसे होओगे तुम्हारे लिये भी वह "क्या" बन जावेगा फिर उससे तुम्हें लाभ क्या? प्रत्युत उस आडम्बर में तुम आपत्ति मानोगे।

卐 ॐ 卐

४६ माया

१–५२५. यह दृश्य जगत व ऐसा द्रष्टा ये सब मायाजाल हैं क्योंकि ये यों रहते तो हैं नहीं;—क्षणभर का समागम है परन्तु उस ही क्षण में मोही आपे से बाहर हो जाता और पापी, मलिन बनता रहता।

卐 ॐ 卐

२–५२६. जो दिखता, वह विश्वास के योग्य नहीं क्योंकि वह पर है जो अपना है वही विश्वास के योग्य है, अपना है—अपना सहज स्वभाव, उसके अतिरिक्त सब अहित हैं, अपने पर दृष्टि दो, मत आकुलित बनो, क्या रखा है चार दिन की चांदनी में, आखिर तो अँधेरी ही होना है परन्तु भीतर की चांदनी में अँधेरी आपन्न नहीं है प्रत्युत शीघ्र ही पूर्ण अनन्त ज्योति प्रगट होकर सदा रहेगी।

卐 ॐ 卐

३–५२७. दिखने में आने वाला समस्त जगत पर्यायरूप है

अतः क्षणिक और मायारूप हैं पर इन्हीं मायाओं का आधार तत्त्वभूत कुछ है और वह भेद रूप से कई भागों में विभक्त है किन्तु सत्त्वसामान्य की दृष्टि में सर्व सत् स्वरूप है उसे न पहिचानने वाले पर्यायबुद्धि होने से मोही होते हैं, यह ही दुःख का मूल है, सर्व जगत से न्यारा रहने वाला (शुद्ध उपयोगी ही सच्चा सुखी है।

卐 ॐ 卐

४–५३४. जीवन का कुछ विश्वास नहीं किसी भी क्षण मृत्यु आ सकती, फिर क्या होगा, जो सबका हुआ सो सोच लो, जिस शरीर को रुचि से देखते हो, पोषते हो, जिस के कारण अपने को भूलते हो, लोकेषणा करते हो वह शरीर आग से जल कर खाक हो जायगा।

卐 ॐ 卐

५–५५५. काम करते हो—अच्छे कहलाने के लिये, पर यह तो बताओ— किन में अच्छे कहलाने के लिये? अपने ही समान जन्म मरण क्लेश व्याधि कषाय आदि के दुख भोगने वाले अपर आत्मावों में? अरे...अपर आत्मावों से अधिष्ठित शरीरों में? सो शरीर तो जल कर सब खाक हो जावेंगे और आत्मायें जिस भव में जावेंगे विकल्प द्वारा वहां के हो जायंगे इस अहित और असार

संसार में तुझे क्या कुटेव लग गई कुटेव को हटा और वस्तुस्वरूप को समझ ।

卐 ॐ 卐

६–५५६. आत्मन् ! तू बाहर कुछ मत देख और यदि दिखें ही तो मायारूप मानता जा, जगत में कोई वस्तु रम्य नहीं, वहां कहीं भी हित का विश्वास न कर, न उनसे नाता जोड़ ।

卐 ॐ 卐

७–५६५. कौन किसे जानता ? कौन किसे मानता ? सब मायावियों का खेल है ।

卐 ॐ 卐

८–६१२. पर पदार्थ ज्ञान में आते हैं याने ज्ञान के विषय हैं, तुम उनमें रुचि मत करो क्योंकि ये हित कुछ भी नहीं कर सकते, ये पर ही तो हैं, संसार इन्द्रजाल है, दिखने बोलने लिखने वाले ये सब क्षणिक हैं, आत्मा का स्वरूप अमूर्त है, ज्ञानमय है, इसे कोई कुछ कह भी नहीं सकता, यह तो अपनी योग्यता से अपनी परिणतियां कर अपना फल पाता रहता है । दूसरों से इसका कुछ न बिगाड़ होता न सुधार होता ।

卐 ॐ 卐

९-६१४. जो जमघट दिखता है न वह तत्त्व है और न उसका देखने वाला वह तत्त्व है, दोनो ही सयोगज पर्याय हैं वास्तविक याने शुद्ध पदार्थ नहीं हैं।

卐 ॐ 卐

१०-६३४. मुझे (इस पर्याय को) कोई न जाने कोई न माने किसी को भी परिचय न हो क्योंकि होती भी क्या भलाई है ?...मेरी...उन बातों से...; जगत धोखा का नाटक है।

卐 ॐ 卐

११-६८६. संसार में जो कुछ दीखता है वास्तविकता से देखो तो सार का नाम भी नहीं।

卐 ॐ 卐

१२-७२४. संसार में सभी चौकीदार या मुनीम मालूम हो रहे हैं, यहां तो कोई मालिक ही नहीं मालूम पड़ता। ठीक है, यदि सत्य स्वरूप में जगत हो तो मालिक की भी बात चलती या होती।

卐 ॐ 卐

१३-४५७. मैं "मनोहर" नहीं हूं, इन शब्दों से जो वाच्य ख्यात हैं वह माया है, अहित है, इसमें बुद्धि रखने से ही दुःख होता है, मलीनता का प्रादुर्भाव यहीं से है।

卐 ॐ 卐

१४–७३४. किस उधेड़बुन में लग रहा ? सब बेकार चेष्टा है, सहज ज्ञान के अतिरिक्त सब माया है, सहजज्ञानमय आत्मा में स्थिर रह।

卐 ॐ 卐

१५–८००. माया शब्द ही यह बात बतला रहा है—कि जो तत्त्व है सो या मा अर्थात् यह (दृश्यमान सब) नहीं और जो यह है सो तत्त्व मा अर्थात् तत्त्व नहीं—कहां भूले हो ?—पूर्णतया भाव से मोह दूर करो।

卐 ॐ 卐
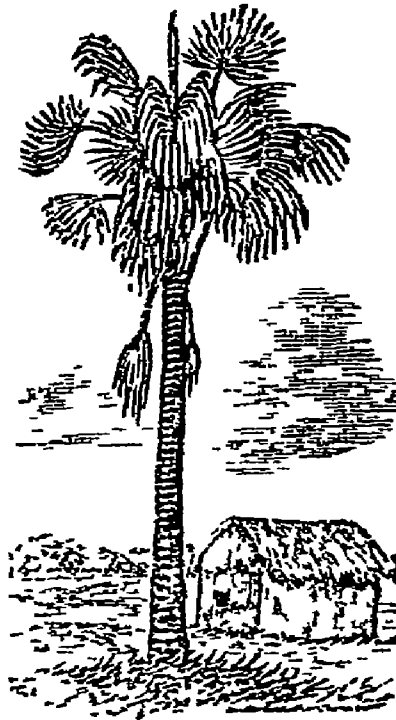
४७ विकल्प

१–५४४. तुम्हारा समय कल्पना में ही व्यती होता है इसे बन्द करो, देखो जब तक इस पर विजय नहीं पाते तब तक रागपक्षीय कल्पना न करके ऐसी कल्पनायें किया करो—यह विकल्प मेरे सहज महत्त्व का विध्वंसक है, ये पदार्थ भिन्न अहित और क्षणिक हैं हमारे सुख में रंच भी मदद करने में समर्थ नहीं हैं।

卐 ॐ 卐

२–५५३. आत्मन्! तुम जिस भव में पहुंचे उस ही भव में निकटस्थ पर पदार्थों के निमित्त विकल्प ही बढ़ाते रहे वही प्रक्रिया यदि मनुष्य भव में करो-तब बतावो—मनुष्य बनने से क्या लाभ है? पशुगति से क्या विशेषता हुई? अरे मूढ़! तुझे जानने और मानने वाला यहां है कौन? किस चक्कर में पड़ा? उठ! अपने ज्ञायक भाव से नाता लगा।

卐 ॐ 卐

३-५५७. मुझ ज्ञानमात्र आत्मा के अतिरिक्त सर्व पदार्थ

बाह्य हैं उनके कुछ भी परिणमन से न मेरा सुधार है, न मेरा बिगाड़ है, मैं तो केवल विकल्पों से ही बरबाद हो रहा हूं। हे सुखैषी! अज्ञानपटल को दूर कर, बाह्य तो बाह्य ही हैं, वे कभी सहयोगी तो हो नहीं सकते तब विकल्प करना व्यर्थ भार ढोना नहीं है क्या?

卐 ॐ 卐

४–५९४. सर्व बाह्य अर्थ कुछ भी दशा को प्राप्त हो, होओ–उसकी होनी से, हमें तो उसके विकल्प से रहित ही रहना है, विकल्प ही मेरे शत्रु हैं। हे शुद्धात्मन्! विकल्प (इष्टानिष्टादि क्षोभ) का क्षण भर भी उदय मत होओ।

卐 ॐ 卐

५–५९७. तुम इतनी तपस्या करते हो, घर छोड़ा, विषय छोड़े, दुबारा भोजन छोड़ा, शीत उष्ण मिटाने का विशेष साधन नहीं रखा, सब कुछ किया, किस लिये? आत्म-स्वरूप की सिद्धि के लिये, तब क्या हुआ विचारो—सर्व विकल्प छोड़ो—शान्त होकर बैठ जाओ।

卐 ॐ 卐

६–६००. अनन्त मुनिराज ऐसे मोक्ष पधारे जो उन्हें उस जमाने में भी कोई न जानता था पर हुए वे भी अनंत सुखी, वह अनंत सुख ही तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये

और सर्व बाह्य कार्य पाप हैं, बाह्य कार्य का विकल्प पाप है।

卐 ॐ 卐

७–६४३. जब समस्त विकल्प रुक जाते हैं तब आत्मा में सहजभाव रह जाता है जो समस्त दुःखों से रहित है, सकल्प और विकल्प आत्मा के अनर्थ करने वाले हैं दूसरा कोई आत्मा का बाधक नहीं।

卐 ॐ 卐

८–६६७. "रत्तो बंधदि कम्मं मुञ्चदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मा रज्ज ॥"

इस जिनोपदेश के पालन बिना आत्मा कभी शान्ति नहीं पा सकता इसलिये सर्व विकल्प छोड़कर इस ही के पालन में लीन हो जावो, अन्य कुछ मत सोचो।

卐 ॐ 卐

९–६७१. बाह्य पदार्थ बाह्य ही रहो मुझे उनसे कोई आशा नहीं, कोई भी पदार्थ आकुलता का ही कारण बनकर दूर दूर रहता है, न तो शान्त करता और न अपना बनता, इसलिये आत्मस्वरूप रहो पर का कुछ भी विकल्प मत करो।

卐 ॐ 卐

१०-७०५. आजकल बड़ी मँहगाई का जमाना चल रहा है चीज सभी मँहगी होती जा रही है अथवा पर वस्तु सब मँहगी ही पड़ रही है, किन्तु तू ने विकल्पों को बड़ा सस्ता बना रक्खा है। अरे! इसका फल बड़ा मँहगा पड़ेगा, विकल्पों को छोड़, यदि विकल्प ही हो तो विकल्परहित शुद्धस्वरूप की भावना रूप ही विकल्प हो।

卐 ॐ 卐

११-७३०. सहजानन्द! तू सहजानन्द है तेरे में कौनसी कम बात है जो आपे से बाहर होता अपने सहजानन्द भाव का श्रद्धान व आचरण कर, सर्व विकल्पों से मुक्त बन।

卐 ॐ 卐

१२-२१४. निर्दोष प्रतिज्ञा पालन करने पर मैंने निर्दोप प्रतिज्ञा पाली ऐसा विकल्प भी स्वभाव के विकास का बाधक है अतः जो निर्दोष प्रतिज्ञ उस विकल्प से भी दूर है वही धीर मोक्षमार्गी है।

卐 ॐ 卐

१३-७४८. दुख में दुखी और लौकिक सुख में सुखी रहने वाला पुरुष अधम है, दुख में भी सुखी रहने वाला पुरुष

मध्यम है, दुख सुख में समान रहने वाला पुरुष उत्तम है और जो दुख सुख की कल्पना से भी रहित है वह उत्तमोत्तम है।

卐 ॐ 卐
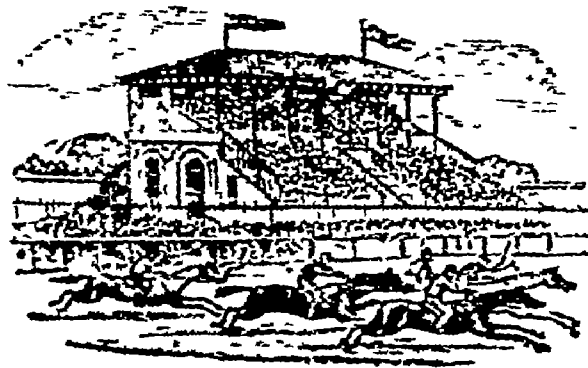
४८ इच्छा

१–३५. पाप की इच्छा करना अशुभ परिणाम है–वह पुण्य का बाधक है, यह तो स्पष्ट ही बात है परन्तु पुण्य की इच्छा करना भी अशुभपरिणाम व पुण्य का बाधक है, वीतराग भाव की रुचि होते हुए भी जो शुभयोग हो जाता है वह विशिष्ट पुण्य का बंधक है, सामान्य पुण्य-बंध तो प्रायः सर्व संसारी के हो जाता।

卐 ॐ 卐

२–११५. अनिष्ट विषयों में अरुचि का होना इष्ट विषयों में रुचि का द्योतक है।

卐 ॐ 卐

३–११८. जब त्रिलोकस्थ पदार्थ के ज्ञान की इच्छा है तब त्रिलोकज्ञाता नहीं और जब इच्छा नहीं तब त्रिलोकज्ञ होजाता।

卐 ॐ 卐

४–१२४. भोग की इच्छा से पुण्य करने वाले के यदि पुण्य

का लेश बंध भी होजाय तो पापानुबंधी पुण्य होगा जिसके उदय में पापबुद्धि होकर पाप कमाकर नरकादि गति में जाना पड़ेगा और दुःख भोगना होगा।

卐 ॐ 卐

५–१५०. जो अपने कार्य का फल कीर्ति, आदर, धन, ज्ञान, सुख आदि की वृद्धि चाहेगा वह निराकुल और संतुष्ट नहीं हो सकेगा।

卐 ॐ 卐

६–१५१. तपश्चरण करके भी मोक्ष की अभिलाषा करना, आकुलता, तृष्णा व संसार बताया गया वहां अन्य अभिलाषायें तो घोर अनर्थ ही समझो।

卐 ॐ 卐

७–१६०. जगत् पुण्य का फल चाहता किन्तु पुण्य करना नहीं चाहता और पाप का फल नहीं चाहता किन्तु पाप परिणाम चाहता व करता है।

卐 ॐ 卐

८–१६३. इच्छा से पहिले संतोष नहीं अन्यथा इच्छा ही क्यों होती, इच्छा के समय भी संतोप नहीं अन्यथा संतप्त क्यों होता, इच्छा के बाद भी संतोष नहीं अन्यथा चेष्टा कर व्याकुल न होता, अंतः इच्छा के पूर्व, वर्तमान

व भावी तीनों रूप दुःखदाई है—इच्छा को त्यागो।

卐 ॐ 卐

९–१८०. भोगेच्छा रोग है और भोग दवा (जो दवा दे) है; रोग पैदा कर दवा करने (दबाने) में रुचि करना विवेकी पुरुष का कर्तव्य नहीं। रोग पैदा ही न हो इससे बढ़कर स्वास्थ्य नहीं अतः तत्त्वज्ञान से इच्छा को दूर करो।

卐 ॐ 卐

१०–१८३. संसारभाव दुर्लक्ष्य है! यश की चाह न करने का उपदेश देकर भी यश के चाह की पुष्टि की जा सकती है जो उपदेश का लक्ष्य पर को ही बनाते वे मुग्ध हैं और जो स्वय को बनाते वे सावधान हैं।

卐 ॐ 卐

११–२३०. यदि सर्वसंग से रहित होना है तो पर द्रव्य की इच्छा छोड़ो इच्छा रहते हुए बाह्य द्रव्य के त्याग का मूल्य नहीं।

卐 ॐ 卐

१२–२३१. इच्छा रहित पुरुष ही अडोल रहता–आत्म-ध्यान में स्थिर रहता और शीघ्र ही सकल क्रिया से रहित शुद्ध आत्मा हो जाता है।

卐 ॐ 卐

१३-१३६. तृष्णा के अनुकूल अर्थ आदि की प्राप्ति अनिश्चित है अतः तृष्णा व इच्छा करना मूर्खता है।

卐 ॐ 卐

१४-२४१. कुछ भी करने की इच्छा न रहना ही कृतकृत्यता है क्योंकि कृतकृत्यता का शब्दार्थ यह है—जो करने योग्य कर चुकना-सो करने योग्य यही है—जो कुछ भी करने की इच्छा न रहना, इसलिये कृतकृत्यता का भावार्थ वही सीधा और स्पष्ट है।

卐 ॐ 卐

१५-३१८. जो जितना अधिक खुशामद चाहेगा या करावेगा उसे उतना ही परेशान होना पड़ेगा।

卐 ॐ 卐

१६-३८५. इच्छा क्षणिक है, इच्छा के काल में तृप्ति नहीं, जो बात नियमविरुद्ध है वह होना नहीं इच्छा कर पाप मत कमावो। जो बात न्यायसंगत है, होना है व होगा, इच्छा कर आकुलित मत होओ, स्वरूप से च्युत होकर संसार मत बढ़ावो। इच्छा करना हर हालत में व्यर्थ है।

卐 ॐ 卐

१७-३८६. इच्छा की पूर्ति होना या इच्छा का नाश होना

इन-दोनों का एक अर्थ है सिर्फ शब्दभेद है पर यह शब्दभेद है पर यह शब्दभेद दो कल्पनायें तैयार कर देता, पूर्ति की कल्पना से अज्ञान व आकुलता की वृद्धि और नाश की कल्पना से संतोष व सुमति की वृद्धि है।

卐 ॐ 卐

१८-४६५. आदर, सेवा, कीर्ति, स्वादुभोजन की चाह एवं दूसरे की आशा ये साक्षात् विपदायें हैं, इनमें फँसा हुआ व्यक्ति चाहे कितना ही प्रसिद्ध हो चाहे मायावृत्ति के कारण उसे लोक न पहिचान सके परन्तु वह सुखी नहीं, पतित है।

卐 ॐ 卐

१९-५१२. कोई पदार्थ न स्वयं इष्ट है न अनिष्ट है तुम्हारी इच्छा ही की सब सब करतूत है, जब इच्छा ही तुम्हारा बिगाड़ करने वाली है तो क्या इच्छा में आये हुए स्कन्ध तुम्हारा सुधार या बिगाड़ कर देंगे ? नहीं, नहीं। इच्छा ही तुम्हारा अनर्थ करने वाली है।

卐 ॐ 卐

२०-६२६. इच्छा करना अपनी आत्मा पर अन्याय करना है जिसकी इच्छा की जाती उसका परिणमन उसके होनहार से होता, इच्छा से मात्र अपना बिगाड़ करने के

और कुछ नहीं होता। कदाचित् इच्छा के अनुकूल उसी की होनहार से कुछ हो भी जावे तो भी राग पङ्क लपेट देने के सिवाय आत्मा को और क्या मिल जाता?

卐 ॐ 卐

२१–६६४ इच्छा का न रहना ही सुख है, सुख का दूसरा उपाय तीन काल में अन्य हो नहीं सकता, यदि सुख चाहते हो तब इच्छारहित बनने के प्रयत्न में लगो; दूसरा कोई उपाय मत सोचो।

卐 ॐ 卐
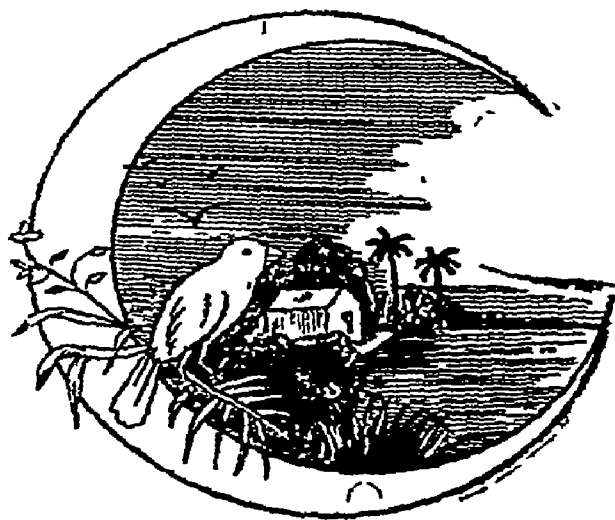
४९ श्रद्धा

१–६६५. जीव के उद्धार का मूल कारण श्रद्धा है, श्रद्धा अपनी ठीक ही रहे फिर तो यदि कदाचित् प्रवृत्ति आत्मचरित से बाह्य भी हो तो भी सुधार होकर रहेगा।

卐 ॐ 卐

२–६६६. निम्नांकित बातों में श्रद्धा अकाट्य होना चाहियेः—

१–मैं अनादि अनंत हूं, शरीरादि सब पदार्थों से न्यारा हूं।

२–अपनी ही ज्ञानपरिणति का कर्ता भोक्ता हूं बाह्य का नहीं।

३–मेरे में जो विभाव (विषयकषाय के परिणाम) उत्पन्न होते हैं वे मेरे हो घात के लिये होते हैं, वे नैमित्तिक हैं मेरे स्वभाव नहीं हैं, मैं उनका स्वामी नहीं हूं।

४–जब जिसको जिस प्रकार जहाँ जो अवस्था होना है वह होकर ही रहती उसे मेटनेवाला कोई नहीं है (अतः आगामी चिन्ता करना या कोई वान्छा करना

निपट अज्ञानता है)।

卐 ॐ 卐

३-१२१. रागादिक वैभाविक एवं आकुल्योत्पादक औपाधिक भाव है, इनमें हित की श्रद्धा न करो।

卐 ॐ 卐

४-१२६. सम्यग्दृष्टि जिस सत्कल्पना से अर्हंत के स्वरूप में अर्हंत का सत्यश्रद्धान व ज्ञान करता है उस सकल्पना को भी अपना स्वभाव नहीं मानता, यदि उसे कोई अपना स्वरूप माने तब वह अर्हंत या निज शुद्धात्मा के स्वरूप पर नहीं पहुंचा।

卐 ॐ 卐

५-१४९. आहार करता हुआ भी जो अपने को अनाहार स्वभावी श्रद्धापूर्वक समझे वह आहार करता हुआ भी अनाहारी है।

卐 ॐ 卐

६-४३. जगत् में केवल रोने वाले ही पापी नहीं है किन्तु हँसने वाले भी पापी समझिये क्योंकि जैसे उनके अरति शोक मोहनीय पाप का उदय है इनके भी हास्य रति मोहनीय पाप का उदय है पुण्यात्मा तो वे है जिनकी रुचि परमात्मा या निजशुद्धात्मा में है।

卐 ॐ 卐

७-४४. पर पदार्थ दुःख का कारण नहीं किन्तु परपदार्थ में जो आत्मबुद्धि है वह दुःख का कारण है क्योंकि जिसे हम अपना नहीं समझते नष्ट होने पर भी दुःखी नहीं होते, और नष्ट हुई भी वस्तु अपनी ही थी ऐसी श्रद्धा में में दुःखी होने लगते ।

卐 ॐ 卐

८-२६२. जिसे सर्वज्ञ की श्रद्धा नहीं वह अपनी वास्तविक अज्ञता व विज्ञता को नहीं समझ सकता, वृथा ही सगर्व बना रहता है ।

卐 ॐ 卐

९-४६९. प्राणियों को जो भी क्लेश है वह मोह परिणाम के क्षोभ का क्लेश है आत्मा को बाहर से कोई विपदा नहीं आती किन्तु उसी के उपयोग का जो मिथ्यात्व परिणमन है वह ही मात्र आकुलता है इस तत्त्व पर श्रद्धा नहीं करने वाले अँधेरे में हैं अतः उन्हें इतस्ततः भ्रष्ट होकर क्षोभ में ही पड़ा रहना पड़ता है ।

卐 ॐ 卐

१०-५४५. सत्य श्रद्धान स्वयं सुख स्वरूप है, यथार्थ श्रद्धारूप उपयोग करो सुखी हो जावोगे, चिन्ता में क्यों बैठे ? सुख का मूल उपाय यह ही है उपयोग बदल, आत्मदृष्टि

कर।

卐 ॐ 卐

११-७५७. अज्ञानी के थाप नहीं अर्थात् अज्ञानी का न महत्त्व है न प्रतिष्ठा है न विश्वास्यता है और न कहीं उसका जमाव है। अज्ञान ही महान् दुःख है। आत्मस्वरूप को श्रद्धापूर्वक देख कि सारा अज्ञान भाग जावेगा।

卐 ॐ 卐

१२-१६१. सम्यक्दृष्टि जीव के दृढ़ प्रतीति है—जो रागादिक भाव निश्चय से आत्मा के नहीं और पुद्गल के भी नहीं इसलिये रागादिभाव स्वयं असहाय होकर क्षीण हो जाते हैं।

卐 ॐ 卐

१३-८८८. आत्मश्रद्धा से वञ्चित मनुष्य कितने ही उपाय करे सुख नहीं पा सकता, संसार की यातनाओं से छूट नहीं सकता, कुछ भी हो पर आत्मश्रद्धा से च्युत कभी मत होओ।

卐 ॐ 卐

५० ध्यान

१-१४३. परमात्मा पर वस्तु है अतः मुझे निश्चयदृष्टि से या उपादाननया संसार से पार नहीं कर सकता परन्तु परमात्मा का ध्यान तो अवश्य दोनों दृष्टि से संसार से पार कर सका, क्योंकि परमात्मध्यान निजावस्था है अतः स्ववस्तु है।

卐 ॐ 卐

२-४८०. यह मन खाली नहीं रहता, इसके सामने तपस्वियों का व तप का आदर्श रखो प्रतिष्ठितों का या प्रतिष्ठा का नहीं।

卐 ॐ 卐

३-५७८. परसम्बन्धी बात तो बड़ी रुचि से सुनते हो कभी अपना भी ध्यान करो कौन हो? मनुष्य होने से क्या लाभ लेना है या पर की चर्चा में ही जीवन गुजारना है?

卐 ॐ 卐

४-६१३. जो जिस भाव में ठहरता है उसके उस भाव की

बहुत काल के लिये संतान बन जाती है, यदि शोक का परिणाम रहेगा तो उसका फल शोक ही शोक है और यदि पर से भिन्न ज्ञानस्वभाव के ध्यान का परिणाम रहेगा तो इसका फल ज्ञान स्वभाव रूप परिणमान ही है, ज्ञानरूप परिणमान ही परमार्थ सुख है। दोनों ही बातें याने शोक और आत्मा सुख ध्यान मे ही मिल जाते हैं अब किसमें आदर करना है ठीक निर्णय कर लो। श्रीपूज्यपाद स्वामी ने कहा है—

इतश्चिन्तामणिर्दिव्यः इतः पिण्याकखण्डकम्।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्वाद्रियन्ताम् विवेकिनः॥

卐 ॐ 卐

५-६७५. रोज रोज पुराना काम करता हुआ भी नया नया काम मानता चला जाता है, मृत्यु किसी भी समय आ सकती इसका १ मिनट भी ध्यान नहीं करता। अरे! अपना यह चित्र तो चित्त में खेंच कि मैं तो किसी गति में चला गया और इस शरीर को लोग टठरी पर रखकर लिये जा रहे हैं, मरघट में पहुंच कर जलाने वाले हैं, और जलाकर लौट गये हैं।

卐 ॐ 卐

[illegible]. आत्मयोग के सिवाय अन्य कोई तुम्हारा सहाय

नहीं अतः सर्वदा इस ज्ञानोपयोग का ही ध्यान रखो।

卐 ॐ 卐

७-६६३. शुद्धात्मा के अतिरिक्त अन्य विषय के चिन्तवन करने की कषाय पाप का उदय है और यह परम्परा महाक्लेशगर्त का कारण है इसलिये अन्य चिन्तवन से उपयोग निवृत्त करो इससे शान्ति का मार्ग अवश्य प्राप्त होगा।

卐 ॐ 卐

८-७१६. आज ता० ३-२-५१ के प्रातः श्री बड़े वर्णी जी ब्र० चाँद मल जी, क्षु० संभवसागर जी ब्र० नन्हें मल जी आदि के साथ पर्यटन को गया तब श्री बड़े वर्णी जी ने अपना गत रात्रि का स्वप्न सुनाया "मनोहर को मुनिरूप में देखा बिल्कुल शान्त सौम्य...सौम्यमुद्रा से कायोत्सर्ग खड़े हुए, तब मैंने (बड़े वर्णी जी ने) पूछा कि लज्जा परीषह जीत ली? तब बोला कि दिगम्बर हुये फिर लज्जा की क्या बात" इस स्वप्न को सुन कर मेरे मन यही भावना रही कि कब महाराज जी का यह स्वप्न पूरा हो।

卐 ॐ 卐

६-७७२. परमात्मस्वरूप एक है और वह है ज्ञायक भाव इसकी ही उपासना वृषभदेव, महावीर स्वामी, रामचन्द्र

जो आदि अनेक नामों के आश्रय से की जाती है। ध्यान में स्वरूप विरुद्ध नहीं होना चाहिये।

卐 ॐ 卐

१०-७७३. वह ज्ञायक भावमय परमात्मा सबका है सब में है उसके अनुभव के लिये तरसोगे, मचलोगे, उसी का ध्यान रखोगे तो उसका दर्शन अवश्य होगा।

卐 ॐ 卐

११-७७४. इच्छाओं से चित्त अस्थिर होता, अस्थिर चित्त में शुद्धात्मा का ध्यान अनुभव नहीं हो सकता अतः परम-आत्मा के अवलोकन के अर्थ इच्छाओं को हटा दो; अरे! फिर बताओ तो सही इच्छा किसकी करते हो? क्या तेरा है?

卐 ॐ 卐

१२-२९३-नीच विचारों को स्थान मत दो अन्यथा यही विचार कुध्यान का रूप लेकर अपने अनुरूप प्रवृत्ति करा के तुम्हें भ्रष्ट पतित व दुःखी कर देंगे।

卐 ॐ 卐

१३-५९. परमात्मा के स्मरण में या निज शुद्धात्मा के स्मरण में ध्यान तो शुद्ध द्रव्य का है पर एक परोक्ष है एक स्वापेक्ष है।

卐 ॐ 卐

५१ संयम

१–६७८. मनुष्य का धन संयम है, संयम से ही मानव धीर, गम्भीर व निःशल्य बनता है।

卐 ॐ 卐

२–६७९. संयमी ही सुखी है, संयम दोनों प्रकार का हो १–इन्द्रियसंयम, २–प्राणसंयम। दोनों प्रकार के संयम अहिंसा ही तो हैं, अहिंसा से प्राणी सत्य विजय प्राप्त करता है, विलम्ब तो जरूर होता है पर निरुपम निरवधि सुख प्राप्त करता है।

卐 ॐ 卐

३–५१३. ये पांचों इन्द्रियां बहिर्मुख है, ये ज्ञान और सुख नहीं पैदा कर सकते, ज्ञान और सुख अन्तः (आत्मा) का गुण है सो इन्द्रियां अन्तर्मुख हैं नहीं अतः निश्चित है - ज्ञान और सुख के लिये इन्द्रियनिरोध आवश्यक है।

卐 ॐ 卐

४–७८६. इन्द्रियों को वश किये बिना मनुष्य जीवन व्यर्थ है, असंयम में तो अनादिकाल व्यतीत किया, सब भवों में मिलता रहा, मनुष्य क्यों हुए ?

卐 ॐ 卐

५–८४३. संयम रत्न पाने के लिये बाह्य वस्तु की क्या आवश्यकता निजज्ञान समुद्र में गोता लगावो और संयम रत्न पा लो ।

卐 ॐ 卐

६–८४८. रागादि से दूर रहकर आत्मा में संयमित रहना संयम है, जब तक संयम न हो बाह्यव्रत पालना धोखा है ।

卐 ॐ 卐

७–८६२. इन्द्रिय संयम सर्व व्रतों का मूल है, जिसकी इन्द्रिय वश नहीं उसका बाह्यव्रत सब निष्फल है तथा वह शान्ति भी नहीं पा सकता ।

卐 ॐ 卐

८–३४७. व्रत लेने के बाद व्रत का पूर्ण पालन करो यदि परिणाम घट जावे तब व्रत में कमी मत करो किन्तु परिणाम घटाने में कारणभूत संकल्प विकल्प को नष्ट करने का यत्न करो ।

卐 ॐ 卐

९-९१३. हम लोगों को क्या किसी ने बड़े रहने का, रौब जमाने का, सबसे विनय कराने का, कषायों को बढ़ाकर भी उन्नत और सुखी रहने का पट्टा लिख दिया है ? अरे ! तुम्हारे शिर मृत्यु मड़रा रही उसे तो देखो। जल्दी ही इस मनुष्य जन्म से हे आत्मन् ! अपना सत्य स्वार्थ निकालो अर्थात् हर प्रकार से संयमी होकर सदा को आत्मा में संयत रहने का उपाय बना लो।

卐 ॐ 卐
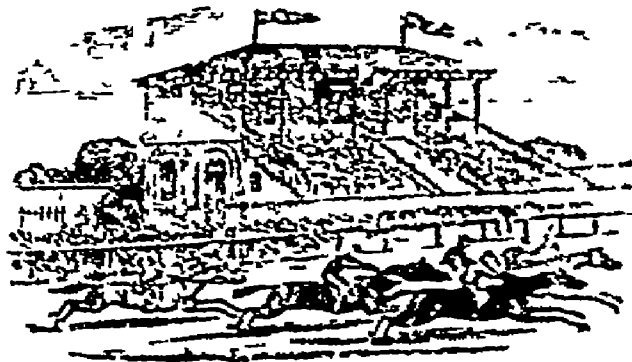
५२ अहिंसा

१–५१९. मोह राग द्वेष से रहित होना तथा ज्ञान का सहज परिणमन होना ही आत्म जागृति है, इस ही अवस्था का नाम पूर्ण अहिंसा है इसके फल स्वरूप अन्य आत्माओं को उसके निमित्त से बाधा नहीं होती इस लिये यह सुसिद्ध है कि आत्मीय सुख पाना अहिंसा का अन्तरङ्ग फल है और अन्य जीवों को बाधा न होना अहिंसा का बहिरंग फल है, आत्मा का स्वभाव अहिंसक है, स्वभाव पाने का उपाय अहिंसा है स्वभावरत हो जाने की दशा अहिंसा है, इसे ही ध्येय बनाओ।

卐 ॐ 卐

२–५२०. संसार में जितने द्रव्य हैं वे अपने अपने स्वरूप में ही परिणमन करते हैं, दूसरे द्रव्य के गुण पर्याय मे नहीं परिणमते, न उनके स्वरूप का बिगाड़ करते अत इस वस्तु स्वातन्त्र्य की दृष्टि में उपादान तथा पर क स्वरूप न बिगाड़ने के कारण सारा जगत अहिंसामय है परन्तु इससे विपरीत दृष्टि होने पर दृष्टि करने वाला ही अशान्त और विपन्न हो जाता है। अजीव पदार्थ क

कोई विगाड़ नहीं होता।

卐 ॐ 卐

३–५२३. संसरणशील आत्मा काम, क्रोध, मान, माया, तृष्णा, मात्सर्य आदि विकारों से स्वयं आकुलित बनकर शान्ति का घात कर स्वयं हिंसक बनरहे हैं और उन्हीं कषायों की वेदना न सह सकने के कारण जो उनकी प्रवृत्ति होती है उससे अन्य जीवों को बाधा उत्पन्न होने के कारण व्यवहार में भी हिंसक बन रहे हैं इस हिंसा से स्वयं का महान् अकल्याण है अतः सुख चाहते हो तो परमार्थ अहिंसा का आश्रय लो।

卐 ॐ 卐

४–८०८. सम्प्रदाय के नाम ही अहिंसा तत्त्व को सिद्ध करते हैं फिर भी सम्प्रदाय के नाम पर हिंसा की जावे तो महाअंधेर है। जैसे—हिंदू=हिं—हिंसा से दू—दूर सिक्ख (शिष्य)=आत्मतत्त्व सिखाये जाने योग्य। ईसाई (ईशाई)=आत्मतत्त्व के ईशपन (मालिकाई) का उद्योगी। जैन–हिंसादिक भाव को जीतने का उद्यमी। मुसलमान मुसल्ले ईमान=सत्यतत्त्व का दृढ़व्रती। पार्श्वी (पारसी) पार्श्व–पासवाली वस्तु वह है आत्मज्योति जो कि

अहिंसामय है उसे माननेवाला आदि ।

卐 ॐ 卐

५–८०६. यह संसार तो काजल की कोठरी है उसकी कालिमा से बचने का उपाय बस एक यह है–अहिंसामय आत्मतत्त्व का दर्शन और आचरण ।

卐 ॐ 卐

६–७६०. आत्मन् ! ऐसा कौनसा कार्य अटका है जिसके लिये दूसरों को सताना पड़े, तेरा कार्य तो ज्ञानमात्र बने रहना है ।

卐 ॐ 卐

७–७६८. क्रोधादि कषाय ही हिंसा है, इनके मेटने का एक उपाय यह भी है—"जब तेरे क्रोधादि कषाय हों तब उन्हें बाहर व्यक्त न करो यद्यपि भीतर कुछ भी, रोकना बुरा है तथापि जब वे होते हैं तब क्या करें ? —बाहर व्यक्त होने पर प्रायः कषाय की संतति हो जाती है और अनेक विवाद व कलह उत्पन्न हो जाते हैं तथा जो कषाय आगया जिसे कि व्यक्त न होने दिया उसे, अपने अहिंसक स्वभाव को लक्ष्य में रख कर शीघ्र हटा दो" इस उपाय को अपने जीवन में सदा करते रहो, क्योंकि अहिंसा ही सर्वोच्च सुख का उपाय व स्वरूप है ।

卐 ॐ 卐

८—६०२. प्राणीमात्र की अहिंसा का भाव न रह कर केवल किसी समाज की, जाति की, देश की, मनुष्यमात्र आदि की अहिंसा व दया का भाव रखना भी एक व्यामोह का फल है, वह व्यामोही भी वास्तविक तत्त्वज्ञान से दूर है, तत्त्वज्ञान पूर्ण अहिंसा लक्ष्य कराता है।

卐 ॐ 卐

६—६०३. अहिंसा से ही आत्मा सत्य सुखी हो सकता अपनी शक्ति को न छुपा कर अहिंसा की साधना में प्रयत्न करो। सब से पहिले तत्त्व ज्ञानी बनो फिर इन्द्रिय संयम पालो और कषायों से दूर रहने का प्रयत्न करो।

卐 ॐ 卐

१०—६०६. अहिंसा ही धर्म है उसके परिणमन से ही आत्मा सुखी हो सकता, अहिंसा से दूर रहने में ही इतना संसार व्यतीत हुआ और आपदायें पाई। अहिंसा है—आत्मा के सहज स्वभाव का विकास।

卐 ॐ 卐

११—६१६. हिंसा करनेवाला भी तो मरता ही है, वह किस की हिंसा करता है? वह प्राणी दो दिन पहिले शरीर छोड़ गया, जो हिंसा कर रहा वह दो दिन बाद मरा; मरना तो उसे भी पड़ता परन्तु हिंसक अपने मरण का कुछ

ध्यान ही नहीं करता; तत्त्व से देखो—तो हिंसक तो जीवित ही बुरी तरह मरता जा रहा है ।

卐 ॐ 卐

१२–६१७. बलि करने वालों की भी अज्ञानता और क्रूरता का ठिकाना ही क्या ? ओह !! बेचारे तत्त्वज्ञान से कोसों दूर हैं अतः महा गरीब हैं और खुद ही अपने आप संसार, महापाप, महाक्लेश व दुर्गतियों के गड्ढे में गिर रहे हैं अतः घोर अंधेरे में हैं, आह ! इनके मन में या जीभ पर यह बात नहीं आती क्या ? कि जैसा अपना जी तैसा सबका जी । हे भगवन् ! इनको सुमति प्राप्त हो...सबका...भला हो ।

卐 ॐ 卐

५३ सहजपरिणति

१–३७४. जो तुमने पूर्व पुण्य उपार्जित किया उसके क्षणिक उदय का फल वैभव या पूछताछ है, स्वाधीन चीज नहीं उसके निमित्त से जायमान सुख तृष्णा कर भरा है इसमें क्या मग्न होना अपने सहज सुख निधि का ध्यान कर रागद्वेष को हटावो ताकि नवीन बन्धन न हो।

卐 ॐ 卐

२–४७२. मनोहर कहकर संबोधना अब अटपटा सा लगता जब मैं न मनोहर शब्द रूप हूं न मनोहर बुद्धि रूप हूँ तब परमार्थ समझाने के अवसर में उपचरित का सांस्कर्य-हेतुक प्रयोग करना बेजोल बात है तू तो अपने को सहज स्वभावमय देख।

卐 ॐ 卐

३–३९७. व्यवहारी, वर्ष के प्रथम दिन को नूतन दिन कहते हैं, वस्तुतः तो वही नूतन दिन है जब पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का बोध हो और बाह्य परिणति मिटकर सहज

परिणति हो ऐसा दिन पाने पर आत्मा की अभूतपूर्व जागृति होती है।

卐 ॐ 卐

४–७४३. मन वचन काय के प्रयत्न को रोक कर आत्मा की सहज स्थिति का जो अनुभव होता है, उसमें महान् आनन्द है, परन्तु जिन्हें इस आनन्द का अनुभव नहीं वे ही विषयों की सेवा में आनन्द की श्रद्धा करते हैं।

卐 ॐ 卐

५–७७७. जिस का उपयोग शुद्धात्मा की ओर लग गया है उसका संसार विकार अवश्य दूर होगा और वह अनन्त सुख पावेगा।

卐 ॐ 卐

६–७७६. आत्मन्! क्या तूने शुद्धात्मस्थिति को उत्तम मंगल शरण समझ पाया या नहीं? यदि समझ लिया तब बेड़ा पार है। समझ चुकने की परीक्षा का लक्षण एक यह भी है जो "यह न हुआ वह न हुआ" यह विकल्प नहीं रहना चाहिये।

卐 ॐ 卐

७–२२७. (वर्तमान परिणाम को लक्ष्य में रखकर बार बार सोचो) मेरा यह स्वभाव नहीं—मेरा यह स्वभाव

नहीं ।

卐 ॐ 卐

८–६०६. मेरी सहज परिणति ही अमृत है, जो दूसरे के आश्रय से बात हो उसकी क्या इज्जत ? मैं स्वयं ही सुखपूर्ण हूँ । मेरा अपने आप जो हो सो ही हो क्योंकि मैं स्वयं सत् हूँ रक्षित हूँ अविनाशी हूँ। आशा का क्लेश ही क्यों हो ।

卐 ॐ 卐

६–६१०. परिश्रम करके क्लेश बटोरते ? कितनी मूढ़ता है !···परिश्रम और क्लेश भी !! दोनों को मिटावो, शान्त होओ, सहज परिणत होओ; जगत् धोखा है, सर्व भिन्न हैं, तू तो अकेला ही है ।

卐 ॐ 卐

१०–६१६. आत्मा की सहज परिणति ही भगवती है जिसके प्रसाद से आत्मा की अनन्त विजय होती है ।

५४ तत्व-स्वरूप

१–५. विभाव केवल एक पदार्थ (अबद्ध) रहने में नहीं, दुःख भी केवल आत्मा में नहीं, दूसरी वस्तु के सम्बन्ध से दुःख होता और दूसरे का पर्यायवाची शब्द द्वन्द्व है तभी तो लोकों नें दुःख का नाम द्वन्द्व (दन्द) ही रख दिया।

卐 ॐ 卐

२–७. प्रत्येक मोही जीव अपने सुख को चाहते हैं, दूसरों को या दूसरों के सुख को चाहना भी अपने सुख के लिये हैं, यह मुझे चाहता है ऐसा मानना भूल है। सर्व वस्तु की क्रिया अपनी अवस्था की प्राप्ति के लिये है।

卐 ॐ 卐

३–१४. दूसरे से बात करते समय अपनी व उनकी अनंत-शक्ति का स्मरण करते रहो।

卐 ॐ 卐

४–८६. अनेकांत में धर्म स्वभाव गुण क्रिया आदि विविध हैं तो अपेक्षा भी विविध है, विरुद्ध अनेक धर्म की 'अपेक्षा'

एक मानने में अनेकांत का विनाश है, अपेक्षायें अनेक मानने में नहीं क्योंकि वह तो वस्तुस्वभाव है।

卐 ॐ 卐

५–११९. आत्मस्वरूप में न किसी वस्तु का संयोग है और न वियोग है फिर कहाँ हर्ष किया जाय और कहां खेद किया जाय।

卐 ॐ 卐

६–१५५. कल्पना जाल ही संसार है अतः वस्तुस्वरूप को लक्ष्य में रखकर कल्पनाओं को मिटावो।

卐 ॐ 卐

७–१७४. रे विधि! मेरे साथ अनादिकाल से रहने पर भी तू थोड़ा सा भी मेरा स्वरूप ग्रहण कर लेने का लाभ नहीं ले पाया फिर साथ क्यों रहता? शायद तू यह सोचे कि साथ छोड़ने में कुछ हानि उठाना पड़े तो सुन जिसके ज्ञान में विश्व की यथार्थ व्यवस्था है ऐसे भगवान् सर्वज्ञ देव की आज्ञा है जो तेरा स्वरूप त्रिकाल में नष्ट न होगा चाहे साथ रह या न रह।

卐 ॐ 卐

८–२२१. पदार्थ चाहे भूत हों या भविष्यत्, पर उनका आकार (ग्रहण=जानना) तो केवलज्ञान में विद्यमान

रहता तथापि वह ज्ञान चैतन्य चमत्कार मात्र है।

卐 ॐ 卐

९–२८९. जैनधर्म है सो सत्य धर्म है यह तो पक्षगत बात है किन्तु जो सत्यधर्म है वह मोहादि शत्रुवां के जीतने वाले (जिन) भगवान् के द्वारा प्रकाशित धर्म है यह निष्पक्ष बात है।

卐 ॐ 卐

१०–४६२. कोई लोग सोचते हैं कि एक ब्रह्म में से ये कण निकलते हैं तब ये प्रश्न उठने अवश्यंभावी हैं कि क्यों निकले ? इच्छा क्यों हुई आदि।

卐 ॐ 卐

११–४६३. एक अखंड द्रव्य के कुछ प्रदेश शुद्ध और कुछ अशुद्ध हों यह नहीं हो सकता, जहां कोई शुद्ध और कोई अशुद्ध दिखे वहां अनेक द्रव्य ही समझना।

卐 ॐ 卐

१२–४६४. सर्व जीवात्मा यदि एक ब्रह्म के अंश है तब अंशों की करतूत से ब्रह्म को ही दुखी होना चाहिये यदि खुद दुखी है तब क्या खुद के दुःख दूर करने में वह शक्तिहीन है ? यदि है तब लोकवत् महत्त्व हीन हो गया।

卐 ॐ 卐

१३-४६५. तात्त्विक बात यह है—जब यह आत्मा इष्टानि-ष्टादि विकल्पों को त्याग करके निर्विकल्प ज्ञानमात्र हो जाता है तब उपाधि रहित परिणति के कारण समस्त निर्विकल्प आत्माओं का सदृश अभेदरूप परिणमन हो जाता है अतः जात्या एक है, पूर्ण सदृश होने पर भी आधार भिन्न भिन्न है पर वहां तो एक ब्रह्म से भी बढ़कर बात है जो उन्हें तो ये भी भेद अनुभूत नहीं होता।

卐 ॐ 卐

१४-४७१. सोचो—जो द्रव्य है उसका घंटे बाद, कल व और कभी कुछ परिणमन तो होगा ही; होगा उस द्रव्य की स्वतन्त्रवृत्ति से पर होगा तो अवश्य। अब जो होगा उसे कोई निर्मल निर्विकल्प आत्मा जाने तब उसमें द्रव्य को आधीनपना क्या आया? सूर्योदय का समय जान लेने से क्या उदय के लिये सूर्य परतन्त्र होजाता? या सूर्य का व्यापार रुक जाता?

卐 ॐ 卐

१५-४६६. कुछ लोग कहते हैं—कि जैसे समुद्र से बबूला या पृथ्वी से पेड़ निकलता इसी तरह एक ब्रह्म से ये

सब जीव निकले। प्रथम तो दृष्टान्त विरुद्ध है क्योंकि अनेक बिन्दुओं का संघात समुद्र है और पृथ्वी पेड़ के परमाणु अनेक द्रव्य हैं खैर! वे पृष्टव्य हैं—कि हम सब जीव, द्रव्य हैं या पर्याय? यदि द्रव्य हैं तब तो यह विज्ञान का नियम है कि किसी द्रव्य से कोई द्रव्य पैदा नहीं होता, सर्व द्रव्य स्वतः अनादि सत् हैं। यदि हम सब पर्याय हैं तो क्या एक ब्रह्म की हैं या अपने अपने ब्रह्म की? यदि एक ब्रह्म की पर्याय हैं तब तो पर्याय का असर द्रव्य में होता सो अनेक प्रकार के सुख, दुःख, राग, द्वेष रूप अनंत अनपेक्षित विरुद्ध पर्यायें एक द्रव्य में एक साथ कैसे हो सकती हैं; खैर! मान भी लिया जावे तो हमारे सुख दुःख का असर अनुभव एक ब्रह्म को ही होना चाहिये हमको नहीं, और ऐसा होने पर वही दुखी होवे हम लोग क्यों दुखी हो रहे हैं तथा जो दुखी होता वह ईश्वर नहीं। यदि हम लोग अपने अपने द्रव्य के पर्याय हैं तो सिद्ध होगया कि जगत् अनंत द्रव्यों का समुदाय है और प्रत्येक द्रव्य अपनी अपनी पर्याय से परिणत हो रहा है अतः सब के आधार स्वयं ही सब हैं; किसी एक पदार्थ से ये जीव

नहीं निकले; अपनी सची श्रद्धा करो नहीं तो सारे वेद पुराण आदि पढ़कर भी स्वतन्त्रता, शान्ति व सुख एवं पवित्रता न पा सकोगे।

卐 ॐ 卐

५५ सत्सङ्ग

१–६१. यदि सत्समागम न मिले तब एकान्त में रहना ही श्रेष्ठ है परन्तु असत्पुरुषों का समागम ठीक नहीं।

卐 ॐ 卐

२–६२. एकान्त निवास के अभिलाषियों को दृढ़ भेदविज्ञानी होना चाहिये अन्यथा वहां पतित भी हो सकता।

卐 ॐ 卐

३–६९. मैं अत्यन्त भूल कर गया जो पूज्य बाबा जी (बड़े वर्णी जी) का समागम छोड़कर यत्र तत्र भ्रमण कर रहा हूं यद्यपि प्रायः सर्वत्र साधर्मी भाइयों का समागम अच्छा है किन्तु विद्वान् व चारित्रवान् त्यागिपुरुषों के साक्षात् उपदेश मिलन का साधन न होने से यत्र तत्र शान्ति नहीं रह पाती अब शीघ्र ही ऐसे समागम का उद्यम करना ठीक है।

卐 ॐ 卐

४–२७०. सत्समागम मिलना अतिदुर्लभ है यदि कदाचित्

मिल जाय तो उसका बना रहना अति कठिन है, क्योंकि सभी पुरुषों का विचार प्रतिकूल घटना घटते ही अस्थिर हो जाता है।

卐 ॐ 卐

५–३१७. रे मनोहर! वयोवृद्ध संयमवृद्ध ज्ञानवृद्ध के निकट रहने का लक्ष्य रखो, उनका समागम गुण विकास का वातावरण है।

卐 ॐ 卐

६–३३६. सत्संग करो, सत्पुरुष वही है जो संसार, शरीर और भोगों से विरक्त हो और पवित्र आत्मा जिसके लिये आदर्श हो।

卐 ॐ 卐

७–४५४. मुमुक्षु पुरुष जब तक अपने से विशेष पुरुष मिले उसके समागम और आज्ञा में रहे।

卐 ॐ 卐

८–७५६. सिर्फ अनुमान और सन्देह के आधार पर या दूसरे पुरुषों के कहने पर ही उत्तम पुरुषों से नहीं हटना चाहिये।

卐 ॐ 卐

९–७८०. जब तक समाधिभाव नहीं हुआ—सत्संग कभी

मत छोड़ो, सत्पुरुष वही है जो मिथ्याविश्वास व कषाय से दूर रहते हैं।

卐 ॐ 卐

१०–८२२. सज्जन पुरुषों के सङ्ग से पाप बुद्धि नष्ट होकर पुण्य परिणाम बन जाता है; जैसे लोहा पारस पाषाण के सङ्ग से सुवर्ण बन जाता है, सत्सङ्ग का आदर करो।

卐 ॐ 卐

११–४०४. मनोहर! तुम जिस सहवास में रहो—तुम्हारा व सभी का यह सहवाससिद्धान्त होना चाहिये—जिस की जब तक इच्छा हो तब तक साथ रहे, जब इच्छा न हो चला जावे जब इच्छा हो आजावे, इसी तरह तुम्हारी जब इच्छा हो जावो और आवो। संकोच, अन्वेषण चिन्ता और समालोचना की आवश्यकता न रहे।

卐 ॐ 卐

१२–८९४. सारा दुःख तो विकल्पों का ही है, विकल्प न हों तो सुख है, विकल्प तब न हों जब कषाय न हो, कषाय तब न हो जब तत्त्वज्ञान हो, तत्त्वज्ञान तब हो जब तत्त्वज्ञानी का संग पाये इसलिये सत्संग का उपक्रम करते रहो।

卐 ॐ 卐

५६ चर्या

१–२६. स्वाध्याय, ध्यान, पठन पाठन आदि कार्यों मे समय बिताते ही रहो; बेकार बैठे रहने में दुष्कल्पना का उद्भव होने लगता।

卐 ॐ 卐

२–७६. स्वाध्याय ध्यान, भक्ति करने की इच्छा करने वाले पुरुषों को ऊनोदर तप करना चाहिये।

卐 ॐ 卐

३–७७. असंयम, भोगासक्ति व करने योग्य कार्य को स्वयं न करने से तन मन धन तीनों की बरबादी है।

卐 ॐ 卐

४–१५८. मधुमांसरहित, रसापेक्षारहित अपनी अप्रयोजकता से निर्मित भिक्षाचर्या से दिन में ऊनोदर एक बार किया गया आहार ही योग्य आहार है; विरक्त गृहस्थों को भी ऐसा ही आहार करना चाहिये केवल भिक्षाचर्या का उन्हें आदेश नहीं इसलिये जो अनायाम भोज्य आहार प्राप्त हो उसे भोजन के समय मौनपूर्वक किसी वस्तु की

चाह का संकेत न करके ग्रहण कर लेना चाहिये।

卐 ॐ 卐

५-१८४. शास्त्रसभा में जो शब्द निकलते हैं वैसे शब्द यदि एकान्त में अपने प्रति निकल जाँय तब तो ज्ञानी है अन्यथा ग्रामोफोन है।

卐 ॐ 卐

६-१८७. प्रभो! यदि परोपकारिणी संस्था या सभा का काम लेता हूं तो चिन्तातुर हो जाता और सोच होता कि ये तो तेरा स्वभाव नहीं क्यों भार लादते? यदि छोड़ता हूं तब अशुभ विकल्प होने की संभावना है तब उससे निवृत्त होने के अर्थ शुभ आश्रय पाने को तड़फड़ाता, भगवन्! यह कैसा खेल है—कैसा नाच है। क्या होनहार है? मैं तो अपना भविष्य आपके ज्ञान को सौंप चुका अब तो आप ही प्रमाण हैं।

卐 ॐ 卐

७-१८८. क्या यह मीठी वेदना है...या संसार का नाच है? या सरागसम्यग्दृष्टि की लीला है? भगवन्! मैं तो अत्यन्त छद्मस्थ हूं क्या जानूं! मैं तो विकल्पों के परिश्रम से थक गया हूं, आप की शरण में आराम चाहता हूं।

卐 ॐ 卐

८-२०२. मनोहर ! तुम्हें तो प्रत्येक पदार्थ या अवस्था से गुण ग्रहण करने की ही आदत डालना चाहिये ।

卐 ॐ 卐

९-२२८. जो कुछ पढ़ा, पढ़ाया, सुना, सुनाया, उसे स्वयं के अर्थ रचनात्मक नहीं किया तो उस से लाभ नहीं प्रत्युत हानि है क्योंकि इस सफाई से चेतने का अवसर नहीं मिलता और यदि अधर्म की पुष्टियों में ज्ञान को सहकारी बनाया तब कौन रक्षक होगा ?

卐 ॐ 卐

१०-२६१. सम्यक् प्रवृत्ति करने में यदि लोकहास्य का भय है तब यह सम्यक्त्व का अतिचार है अतः लोक-हास्य का भय मत करो जो उत्तम जचै सो करो ।

卐 ॐ 卐

११-३२६. स्वात्मदृष्टि, परमात्मस्मरण, शास्त्राभ्यास, दोपवादमौन, सद्वृत्तकथा, प्रियहितवचनालाप सत्संगम इस प्रकार क्रम से पुरुपार्थ करो अर्थात् पूर्व पूर्व की ओर बढ़ो यदि पूर्व में शिथिल हो जाओ या थक जावो तब उत्तर का आश्रय लो । सर्व प्रथम स्वात्मदृष्टि इसलिये है कि वह सर्वोपरि है, सत्संग अन्त में इसलिये है कि इससे भी चूक जाने पर कल्याण की आशा नहीं ।

卐 ॐ 卐

१२–३४८. सदा किसी के साथ रहने या किसी को साथ रखने का नियमवद्ध वचन नहीं देना क्योंकि परिणाम परिवर्तनशील होते हैं।

卐 ॐ 卐

१३–३६६. ऐसी चेष्टा मत करो जिसमें तुम्हारा अहंकार प्रतीत हो या दूसरों को क्लेश उत्पन्न हो।

卐 ॐ 卐

१४–३६१. अपनी दृष्टि का सदुपयोग कर अर्थात दृष्टिविषय देवता, शास्त्र, साधर्मी आदि धर्ममूल को ही वना, अन्यत्र दृष्टि मत कर।

卐 ॐ 卐

१५–३६६. वैसे तो सभी इन्द्रियज्ञान समता का प्रायः बाधक है किन्तु आंख द्वारा अवलोकन अधिक बाधक है अतः नेत्रोपयोग निजचर्या में ही करो, यथा लिखने में, पढ़ने में, चलने में, उठने वैठने में, चीज उठाने रखने में, दर्शन में, पूजन में, वंदन में, वैयावृत्य में, भोजन में, धर्मात्मावों से वार्तालाप करने में, दुखियों को समझाने में, नित्यक्रिया में।

卐 ॐ 卐

१६–४०५. विशिष्ट आपत्ति, व्याधि व प्रोग्राम के अतिरिक्त

अपनी अहोरात्रचर्या ऐसी बनावो व तदनुसार चलने का प्रयत्न करो।

卐 ॐ 卐

कब से	कब तक	कार्य	विशेष
प्रातः ४ बजे से	सूर्योदय के १ घंटा पूर्व तक	आध्यात्मिक स्वाध्याय	मौन
तत्पश्चात्	१ घन्टा	सामायिक	मौन
तत्पश्चात्	१५ मिनट	आत्मकीर्तनादि	
तत्पश्चात्	१॥ घंटा दिन चढ़ेतक	शौचनिवृत्ति, आसन, स्नान, बन्दना	मौन
तत्पश्चात्	१५ मिनट	धार्मिक भजनश्रवण, भक्ति	मौन
तत्पश्चात्	४५ मिनट	प्रवचन	
तत्पश्चात्	१५ मिनट	धार्मिक भजन श्रवण	मौन
तत्पश्चात्	४५ मिनट	तत्त्वचर्चा व समाज सेवा	
तत्पश्चात्	१ घंटा	संभावित आहार चर्या	मौन-(आहारोपरान्त १५ मि० बोल सकना)

तत्पश्चात्	११॥ बजे तक	बसतिकागमन, विश्राम व अवशिष्ट आध्यात्मिक स्वाध्याय	मौन
११॥ बजे से	१२॥ बजे तक	सामायिक	मौन
१२॥ बजे से	२ बजे तक	लेखन	मौन
२ बजे से	३ बजे तक	दार्शनिक स्वाध्याय	मौन
३ बजे से	४ बजे तक	सैद्धान्तिक स्वाध्याय	मौन
४ बजे से	४॥ बजेतक	अध्ययन अध्यापन	
४॥ बजे से	करीब सूर्यास्तकाल से ४५ मिनट पूव तक	यदि समय हो तब चारित्र चारित्र सम्बन्धी ग्रन्थों का स्वाध्याय तथा पारस्परिक प्रवचन	मौन (प्रवचन में अमौन)
तत्पश्चात्	४५ मिनट	विश्राम तथा निकल्प होने पर देश सेवा	
तत्पश्चात्	१ घंटा	सामायिक	मौन
तत्पश्चात्	८ बजे रात्रि तक	चारित्र चारित्र सम्बन्धी ग्रन्थ तथा अन्य ग्रन्थों का स्वाध्याय या मनन	मौन
८ बजे रात्रि से	८॥ बजे रात्रि तक	धार्मिक वार्तालाप या शास्त्र सभा	

८॥। बजे से	६ बजे तक	तत्त्वचिन्तन, भक्ति	मौन
६ बजे से	४ बजे तक	विश्राम व शयन	

卐 ॐ 卐

१७–४०५B, प्रयाण में प्रयाण से कुछ समय पहिले से लेकर प्रयाण के कुछ समय पश्चात् तक, व किसी विशिष्ट आयोजन में पहिले से कुछ बोलना रख लेने पर, किसी के समाधिमरण में या किसी पर विशेष आपत्ति होने पर इच्छानुसार बोल सकना।

卐 ॐ 卐

१८–२५२A, साधनशून्य क्षेत्र में बीमार होने पर व गुरु के पास जाने में, तीर्थयात्रा में, किसी के समाधिमरण में, तथा चातुर्मास को छोड़ कर माह में १ बार जाने में, देशविप्लव के अवसर में अपाशविक वाहन के अतिरिक्त कभी सवारी न लेना।

卐 ॐ 卐

१९–२५२B, धार्मिकसंकट के समय, व परिग्रहत्यागियों को, व पैसा रखने वाले अन्यसाधर्मियों को १ माह में १ बार, स्वयंपत्र दे सकने के अतिरिक्त जवाब के लिये

लिफाफा कार्ड आदि आने पर ही जवाब देने का यदि विकल्प हो तब जवाब देना ।

卐 ॐ 卐

२०-४१०. गृहस्त श्रावकों का दान पूजा प्रधान कार्य है गृहत्यागिपुरुषों का तप ध्यान भक्ति स्वाध्याय प्रधान कार्य हैं अपने कर्तव्यमें लगे रहो अवश्य सफल होओगे।

卐 ॐ 卐

२१-४२७. श्री बाहुबलिजी स्वामी के दर्शन कर परमसंतोष भया इनके दर्शनके बाद आज दुनियां में किसी भी वस्तु के देखने की तृष्णा नहीं रही । मनोहर ! तुम बाहुबलि के दर्शन के प्रसाद से निम्नलिखित २ बातों पर विशेष ध्यान देना--

१--अपने विचार के प्रतिकूल दूसरों की परिणति देख कर संक्लेश मत करो, तुम्हारी ही परिणति तुम्हारे आधीन है।

२--शुद्धि की विधि बताने के अतिरिक्त कभी भी भोजन कथा मत करो ।

卐 ॐ 卐

२२-४२८. तुम्हारे नाम से यदि कोई कहीं सामाजिक संस्था खोली जावे तब वहां कभी डेरा नहीं डाल देना

क्यों कि वह राग का साधन हो सकता।

卐 ❀ 卐

२३-३२८. परिचय बढ़ाना शांतिमार्ग नही अतः किसी से विशेष वृत्तमत पूछो और न अधिक समय तक एक स्थान पर रहो, परस्थितिवश यदि एक स्थान पर रहने का प्रसंग आवे तो अपने ध्यान, स्वाध्याय व्रताचरण से विशेष प्रयोजन रखो हाँ सार्वजनिक शास्त्र प्रवचन एक वार करते रहो जिससे स्वदृष्टि निर्मल हो और अन्य को भी लाभ होसके।

卐 ॐ 卐

२४-४५१. मनोहर! पहली जैसी स्थिति पर आ जावो, जिसे तुम तरक्की समझते वह तो धोखा रहा, फिरसे पाटी पढ़ो।

卐 ॐ 卐

२५-२५२C. किसी सामाजिक संस्था का (जिममें आर्थिक झंझट हो) सदस्यत्व व पदाधिकार स्वीकृत नहीं करना।

卐 ॐ 卐

५७ आत्मसेवा

१–६८. केवल अपना आत्मा ही विश्वास्य है। जो आज मेरे अनुकूल हैं वे कभी प्रतिकूल भी हो सकते, अथवा अनुकूल होने के काल में भी अभिप्राय सब मिलते हो यह असम्भव बात है।

卐 ॐ 卐

२–७१. माना कि दिखने वालों में बहुत से साधर्मीजन हैं पर तुम साधर्मी जैसी रुचि कर तो प्रेम नहीं करते तुम्हारा राग तो व्यवहार प्रधान है अरे मूढ अपना उपकार करते हुए यदि व्यवहार करे तब तो ठीक है— अन्यथावृत्ति में तो तेरा उत्थान है ही नहीं, अतः शुद्ध परिणति के ध्येय से कभी दूर मत होओ।

卐 ॐ 卐

३–७२. जब तक पर पदार्थ पर दृष्टि है पर पदार्थ के आश्रय से अपनी परिणति विभिन्न बनाते हो तब तक अपना उपकार हुआ न समझिये, और जब स्वोपकार हो चुकेगा तब पर दृष्टि मिट जावेगी, इसलिये जब तक सविकल्प

अवस्था रहे अपनी गलती खोजते रहो।

卐 ॐ 卐

४-६६. जीव का स्वार्थ स्वास्थ्य है, अर्थात् सदा के लिये आत्मा में स्थिति है, भोग नहीं वह तो विनाशीक है, तृष्णा का बढ़ाने वाला है, संताप का उत्पादक है।

卐 ॐ 卐

५-१११. अपने लक्ष्य में आत्मस्वरूप बना रहना एक गढ़ है यदि तुझ पर विपदा रूप शत्रु आक्रमण करे तब अपने उपयोग को उस गढ़ में गुप्त कर दे फिर तू अजेय है।

卐 ॐ 卐

६-११४. अपने लक्ष्य में आत्मस्वरूप बना रहना सुधा सागर है यदि तुम्हें कभी तृष्णा का दाह जलावे तब उपयोग की डुबकी उस अमृतसागर में लगा दे फिर तू अमर और शान्त ही रहेगा।

卐 ॐ 卐

७-२६२. किसी भी कार्य को तन, मन, धन सर्वस्व लगा कर भी किया हो तब भी वह पर है उसे छोड़ना ही होगा। आत्मस्वरूप में उपयोग रमाये बिना असन्तोष नष्ट न होगा। अतः जो मार्ग जान चुके हो उस पर

प्रवृत्ति करने में विलम्ब मत करो।

卐 ॐ 卐

८–२६८. जो परसंगति में रत हैं वे बंधवर्द्धक हैं और जो निजसत्ता में लीन हैं वे सहजमुक्त हैं निजसत्ता में लीन होने वाले के स्वयं ही ग्राह्य ग्रहण हो चुका व त्याज्य छूट चुका।

卐 ॐ 卐

९–३३९. आत्मस्वभाव पर दृष्टि देकर अपने को अमर सुखी निरोग अनुभव करो इससे मृत्यु दुःख व रोग की चिन्ता व कल्पना विलीन होगी और धीरता उत्पन्न होगी।

卐 ॐ 卐

१०–३४५. अपने को आदर्श या अच्छा साबित कर देने के अर्थ पर की प्रसन्नता के लिये कार्य करने की प्रकृति जब तक रहेगी शांति का लेश भी नहीं हो सकता। अतः स्वात्म दृष्टि का ही उद्देश्य रहना चाहिये।

卐 ॐ 卐

११–४११. यह शरीर तो क्षणिक व अहित एवं पराधीन है इसकी सेवा में अपने को बरबाद मत कर किन्तु इसके द्वारा अविनाशी, हितस्वरूप और स्वाधीन पद पाने का प्रयत्न कर, तुम्हारे स्वस्थ रहने पर यह शरीर भी स्व-

स्थ रहेगा या तुम्हारा पिंड छोड़कर दुःख से सदा को मुक्त करा देगा।

卐 ॐ 卐

१२–४३२. हे आत्मन्! तूने अनन्त भव विता दिये जिनमें विविध भोग भोगे अब यह भव विना भोग का सही विना अहंकार वा ममकार का सही फिर अनन्त काल सुख भोगेगा दुःख की छाया भी न रहेगी।

卐 ॐ 卐

१३–४६१. बोले सो बिचूचे, अतः यदि लोगों से बोलने का अवसर मिले तब पहले आत्मदृष्टि कर लो पुनः सावधानी से बोलो।

卐 ॐ 卐

१४–४७८. आत्मस्थिति ही सर्वोच्च सुख है आत्मगत है पर इसके लिये प्रिय से प्रिय पदार्थ की स्मृति व इच्छा छोड़नी होगी?

卐 ॐ 卐

१५–४९०. जिसे दुनियाँ उन्नति समझती है वह तो है आत्मावनति और जिसका दुनिया को पता भी नहीं है वह हो सकती उन्नति, अतः जगत से कुछ काम नही सरता अपने अभिमुख बनो और जो करते हो वह

अच्छा है या बुरा इस बात को स्वभाव को लक्ष्य में रख कर अपने से पूछो।

卐 ॐ 卐

१६–५११. यदि बाह्य अर्थ तुम्हारे सहजज्ञान में आवे तो हानि नहीं परन्तु अभी तो यह दशा नहीं है अतः आत्मा के श्रद्धान आचरण द्वारा आत्मा की सेवा कर।

卐 ॐ 卐

१७–५४२. अपना हित और अपना अहित अपने ही भाव से है अतः हित पाने के लिये और अहित से दूर होने के लिये अपने भाव को सँभालो, आर्त रौद्र परिणाम में कुछ भी लाभ नहीं है यह तो दुर्दशा के ही मूल हैं।

卐 ॐ 卐

१८–५६०. दूसरों को अपने अनुकूल करने में या दूसरों के अपने अनुकूल होने में क्या भलाई है? अरे! अपने को अपने वश कर लो तो सर्व सिद्धि है।

卐 ॐ 卐

१६–५८०. ज्ञान स्वरूप आत्मा के अभिमुख उपयोग करना ही मनुष्य जन्म के लाभ का व्यापार है। अन्य बाह्य पर उपयोग करने वाला चाहे करोड़पति हो जावे या सम्राट् हो जावे सब हानि का व्यापार है।

卐 ॐ 卐

२०-६०२. अपना चरित्र गठित रखो फिर तू अजेय है व तू ने अपने लिये सर्व चमत्कार पा लिये।

卐 ॐ 卐

२१-७२३. जगत में किसी को बुरा न समझो, बुरा समझो अपने कषाय भावों को, उनसे घृणा कर; घृणा रहित होते हुए अपने आत्मा में स्थिर हो आत्मसेवी बनो।

卐 ॐ 卐

२२-८५६. यदि कोई पुरुष किसी के प्रेम में आकर अपने को भूल जाता है तो क्या वह आत्मा में रुचि करके पर को नहीं भूल सकता ? आत्मरुचि करो, सर्व सिद्धि पा लोगे।

卐 ॐ 卐
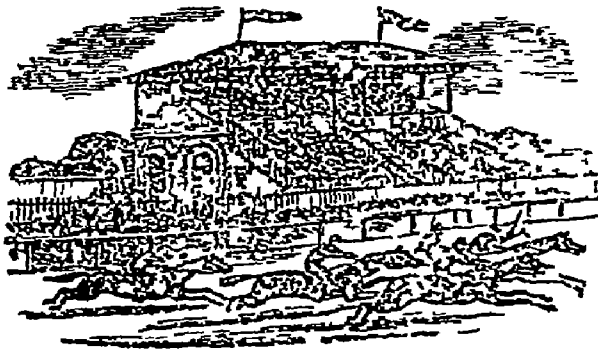
५८ आकिञ्चन्य

१-५३५. आत्मा का कोई नाम नहीं है न जाति, कुल, शरीर है न सम्प्रदाय है तब नामवरी ही क्या? और किस की? व कहाँ? और इस व्यवहार का बड़प्पन ही क्या? कषाय के आवेश में कुछ से कुछ दीखने लगता। कषाय अग्नि को शान्त कर ठंडे दिल से विचारो तो तुम्हारा कहीं भी कुछ नहीं है।

卐 ॐ 卐

२-५४०. आत्मन्! सकल आत्मा तुझ आत्मा से भिन्न हैं, उनकी कुछ भी परिणति से तुम्हारा कुछ भी परिणमन नहीं होता अतः उनके लिये व उनके निमित्त से कुछ भी क्षोभ मत करो; शांति,शक्ति की उपासना से अविचल और सुखी बनो।

卐 ॐ 卐

३-५५६. इस शरीर को (जहाँ तुम हो) येक दिन यदि इन परिचयवालों के समक्ष मरण करोगे तब ये ही परिचय वाले सज्जन आग लगा कर खाक कर देंगे, और फिर...इस शरीर में रखा ही क्या है? पर वस्तु को

जबर्दस्ती क्यों अपनाते ? मूर्ख ! ये तो अपने होते ही नहीं, क्योंकि ऐसा ही वस्तुस्वरूप है, अपने रूप परिणमन होना ही अपना स्व है और उसके ही तुम स्वामी हो ।

卐 ॐ 卐

४-५७२. जब तुमने दुनिया को त्यागा तब दुनियाँ के लिये तुम्हारी सत्ता नहीं रही याने तुम कुछ नहीं रहे फिर भी यदि दुनियाँ में जबरन किसी के कुछ बनना चाहो तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ है ।

卐 ॐ 卐

५-६२०. मुझे कुछ नहीं चाहिये क्योंकि मेरे पास कुछ आता भी तो नहीं है, सर्व पदार्थ जुदे जुदे और स्वतन्त्र हैं ।

卐 ॐ 卐

६-६२३. कौन पदार्थ मेरा हित कर सकता ? कोई नहीं, तो फिर मेरे कोई इष्ट नहीं ।

७-६२४. कौन पदार्थ मेरा बिगाड़ कर सकता ? कोई नहीं: तो फिर मेरे कोई अनिष्ट नहीं ।

卐 ॐ 卐

८-६३५. किसी की कुछ प्रतिष्ठा हो, मुझे नहीं चाहिये:

किसी को कितना भी वैभव मिले, मेरी दृष्टि में कुछ भी नहीं है, किसी को कितने भी भोग मिलें वे भोगें तो स्वरूप से भ्रष्ट होने से गरीब ही तो-हैं।

卐 ॐ 卐

६-६३६. मेरा कहीं कुछ नहीं, कहीं कोई नहीं, अकेला हूँ, असहाय हूँ, स्वयं सहाय हूँ, कुछ और कोई हो भी क्या सकता है? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

卐 ॐ 卐

१०-६६६. कितनी भी चेष्टायें कर लो, ज्ञानमात्र के सिवाय तेरे पास रहता कुछ नहीं, जब मेरा ज्ञानमात्र रहना ही वस्तुस्थिति है तब विभाव होना, पर से ममत्व करना, पर को भला बुरा मानना भारी अज्ञानता है; इसी अज्ञानता से दुखी होना पड़ता, नहीं तो, सहजज्ञान में आनन्द ही आनन्द है।

卐 ॐ 卐

११-६६८. तुमने बीमारियाँ व आपत्तियां सहीं उनमें यदि मरण कर जाते तब क्या यह परिकर तुझ आत्मा को कुछ होता? नहीं होता, फिर ऐसा ही मान कर शान्त बैठो।

卐 ॐ 卐

१२-७००. यह दृश्यमान सब, जिस पर दृष्टि देकर आशा

करते हुए प्राणी नष्ट हो रहे हैं जल के बबूले के समान विनाशीक है उनकी दृष्टि में तुम भले भी कहलाने लगो तब भी तुम्हें क्या कुछ मिल सकता है ? नहीं, क्योंकि शांति और सुख तो आकिञ्चन्य से प्राप्त होता है।

卐 ॐ 卐

१३-२५०. रे मनोहर ! तू अकिञ्चन है, तेरा जगत में कोई नहीं, जगत का तू कोई नहीं, सर्व ओर से बुद्धि को हटा और शान्ति की छाया में बैठकर भ्रम का संताप दूर कर इसी में तेरी भलाई है।

卐 ॐ 卐

५६ क्षमा

१–७४०. कोई कैसा ही कटु शब्द कहे तुम उसका उत्तर मीठे शब्दों में हित रूप दो।

卐 ॐ 卐

२–७४६. अपराधी पर क्षमा ही धारण करो, बदला लेने का ध्यान छोड़कर उसके हित की ही भावना करो, इस वृत्ति से आलौकिक आनन्द पावोगे।

卐 ॐ 卐

३–७८८. अच्छा—क्षमा न करो तो किसका बिगाड़ है ? क्रोध की अग्नि से तो...तुम ही अन्दर (आत्मा में) जलोगे। क्षमा से दूर क्षण भर भी न रहो।

卐 ॐ 卐

४–८६५. क्षमावान् पुरुष स्वप्न में भी अपकारी का भी अकल्याण नहीं चाहता।

卐 ॐ 卐

५–८६६. किसी ने अपराध भी किया हो फिर भी तत्त्वज्ञान

के कारण जो क्षोभ नहीं होना है वही तो क्षमा है।

卐 ॐ 卐

६–८६७. क्षमा गुण आने पर सभी गुण शोभा को प्राप्त होते हैं, क्षमा बिना आत्मगुणों का विकास नहीं होता।

卐 ॐ 卐

७–८६८. क्षमा पृथ्वी को कहते हैं,—क्षमावान् पृथ्वी की तरह गम्भीर होता है, जैसे पृथ्वी पर खोदने कूटने कूड़ा डालने आदि अनेक उपद्रव होने पर भी सहनशील है इसी तरह क्षमावान् पुरुष भी निन्दा प्रहार गाली आदि अनेक उपसर्ग होने पर भी अडोल रहता है तभी तो वह महात्मावों की दृष्टि में आदरणीय है।...क्षमावान् पुरुष स्वयं सुखी रहता है अतः क्षमाशील ही रहो।

卐 ॐ 卐

८–६००. आत्मा क्षमा अपने आप पर करता है, कोई किसी को क्षमाभाव नहीं देता, यदि कोई अपने में क्षमाभाव उत्पन्न कर ले तो वह व्यक्ति दूसरे को क्षमा की बात कह सके या न कह सके वह तो क्षमावान् हो गया। हां! क्षमावान् पुरुष के यदि दूसरे व्यक्ति का ध्यान रहे तब वह उससे क्षमा की बात कहे बिना रहता नहीं।

卐 ॐ 卐

६-६०१. क्षमा सुख का स्वरूप है, निजरूप है उसके लिये क्या विशेष प्रयत्न करना। क्रोध को छोड़ दो फिर क्षमाभाव न आये तब फिर कहीं तर्क करना।

卐 ॐ 卐
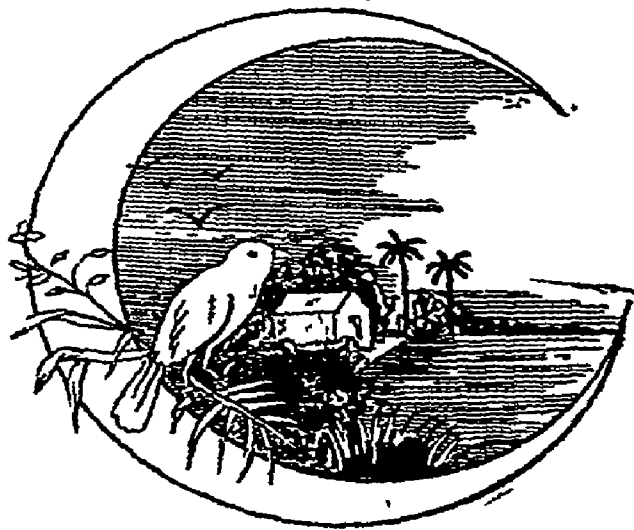
६० सहिष्णुता

१–७७५. महात्मा की कसौटी सहिष्णुता है।

卐 ॐ 卐

२–७७६. जो जरा सी भी कड़ी बात या दूसरों के द्वारा आराम आदर न किये जाने की बात नहीं सह सकता उसमें महात्मत्व की गंध नहीं।

卐 ॐ 卐

३–७८१. जो पुरुष दूसरों के द्वारा की जाने वाली अपनी निन्दा को सुनकर भी क्षोभ नही लाते, समता से सह न कर जाते वे महात्मा धन्य हैं।

卐 ॐ 卐

४–७८२. देह के सुखियापन का जिन्हें जरा भी ध्यान नहीं होता और देहज दुःख समता से सहकर आत्मसाधना में ही उपयुक्त रहते हैं वे महात्मा धन्य हैं।

卐 ॐ 卐

५–७८३. सहनशील पुरुष ही जग का जेता हो सकता है,

बाह्य तो बाह्य ही है, बाह्यचेष्टा से अधीर मत बनो; सहि-ष्णुता तुम्हारा सच्चा मित्र है।

卐 ॐ 卐

६–८२५. सहनशीलता में तुम वृक्ष की तरह बन जाओ? आत्मन्! तू तो गुप्त ज्योति है; तेरा होता क्या... बिगाड़...? क्यों अन्यमनस्क होता।

卐 ॐ 卐

७–६०७. यदि शरीर पर कष्ट भिल गया तो तू क्या घुर गया? यदि दूसरों ने सन्मान न किया तो तेरा क्या गिर गया? किसी ने तेरे विरुद्ध कुछ शब्द कह दिये तो तेरा क्या छुड़ा लिया? बता!...सहिष्णु बन, यहाँ तेरा कोई नहीं है किस पर नखरें करता?

卐 ॐ 卐

६१ शान्ति

१-८. पर द्रव्य के संसर्ग के त्याग में शान्ति और सुख है।

卐 ॐ 卐

२-५३. विरोध मिटने में शान्ति है, विरोध से शान्ति नहीं हो सकती, हम विरोध करके शान्ति चाहते ! इतना तो ठीक है जो हम शान्ति चाहते हैं, पर वह विरोध दूर करने से मिलेगी न कि विरोध रखने से।

卐 ॐ 卐

३=१६२. पदार्थ के भोग या संयोग में शान्ति नहीं किन्तु उस काल में स्वरसतः जो इच्छा का अभाव रहता वह शान्ति का मूल है, जिनके सदा भोग संयोग के बिना ही इच्छा का अभाव रहता है सत्य सुख तो उन्हीं शान्त पुरुषों के है।

卐 ॐ 卐

४-१६७. मैं शान्त हूं ऐसा दुनियाँ को बताने की या समझाने की चेष्टा मत करो क्योंकि शान्तिप्रदर्शन भी

अशान्ति के बिना नहीं होती, समझदार तो ऐसी चेष्टा करते हुए भी तुम्हें अशान्त ही समझेंगे।

卐 ॐ 卐

५–१७६. विचार के अनुकूल वस्तुस्वरूप बनाने में अशांति है और वस्तुस्वरूप के अनुकूल विचार बनाने में शान्ति है।

卐 ॐ 卐

६–१८१. निर्दोष, ब्रह्मचारी ही शान्ति प्राप्त कर सकता है, ब्रह्मचर्य निर्दोष पालने के लिये ब्रह्मचर्यव्रत की ५ भावनायें (स्त्रीरागकथाश्रवणत्याग, स्त्रीमनोहराङ्ग निरीक्षणत्याग, पूर्वरतस्मरणत्याग, कामोद्दीपकेष्टरस-त्याग, स्वशरीरसंस्कारत्याग) भावो और सोचो कि उन भावनाओं में से कौन कौन भावना कार्यरूप में परिणत हुई, शेष भावनाओं को भेदविज्ञान, वस्तुस्वरूपावबोध आदि से परिणत करने का यत्न करो।

卐 ॐ 卐

७–२२४. मनोहर ! व्याधि और मृत्यु का विश्वास नहीं कब आजाय अतः शीघ्र ही आत्मशान्ति पाने का उद्यम कर।

卐 ॐ 卐

७-२४५. निरहंकार हुए बिना शान्ति प्राप्त नहीं हो सकत अतः अहंबुद्धि छोड़ो और सुखी होलो।

卐 ॐ 卐

९-२८८. सत्यसुख वहीं हैं—जहां विकल्पों की शान्ति है, अरे भव्य! निर्विकल्प दशा का तो अवसर आवेगा ही; तब जो चीज नियम से छूट जाना है उसमें राग करने से लाभ क्या? व उसका भार बढ़ाने से लाभ क्या?

卐 ॐ 卐

१०-३०४. यदि तुम्हें शान्ति पसन्द है तो तुम अपना ऐसा व्यवहार रखो जिस व्यवहार के निमित्त से दूसरों को अशान्ति पैदा न होवे क्योंकि तुम्हारे व्यवहार से दूसरों के अशान्त होने पर तुम्हें शान्ति न होगी।

卐 ॐ 卐

११-३५३. त्यागवेष की ओर तुम्हारा प्रयास शान्ति के अर्थ था इस समय कहां हो? विचार करो और सर्व पुरुपार्थ से अपने उद्देश्य पर पहुंचो।

卐 ॐ 卐

१२-३७८A. शान्ति की परीक्षा अनिष्ट समागम में होती।

卐 ॐ 卐

१३-४८५. जिस पद्धति में अब तक बहते आये उस पद्धति

में तुम शान्त तो हो नहीं सके फिर इन संस्कारों को छोड़ो, अलौकिक वृत्ति धारण करो, दुनियां को अपरिचित समझो।

卐 ॐ 卐

१४–६०६. जो पुरुष दूसरों की शान्ति की परवाह न करके किसी भी क्षम्य बात को अशान्ति से करता है वह निर्दय पुरुष है उसका मनोबल हीन हो जाता है और स्वयं अशान्त रहता है अतः प्रत्येक बात को सावधानी से दूसरों की शान्ति की रक्षा का विचार करते हुए रखो।

卐 ॐ 卐

१५–६१४. यदि वास्तविक शान्ति का अनुभव करना चाहते हो तब इसी समय सब को भूल जावो, बाह्य में कितने ही वायदा हों या कितने ही कामों को हाथ लिया हो। ज्ञान का विषय ज्ञानमात्र ही रहे फिर अशान्ति का लेश नहीं।

卐 ॐ 卐

१६–८६१. शान्ति का उदय आत्मा में आत्मा के द्वारा होता है, पर वस्तु शान्ति का साधक नहीं प्रत्युत शान्ति के अर्थ पर वस्तु की खोज करना अशान्ति ही है।

卐 ॐ 卐

६२ शरण

१–११७, स्वभाववृत्त आत्मा आत्मा का रक्षक है और विभावप्रवृत्त आत्मा आत्मा का घातक है।

卐 ॐ 卐

२–१३२, पर पदार्थ से अपने को सशरण मानना अपने को अशरण करना है।

卐 ॐ 卐

३–१३३, पर पदार्थ से अपने को अशरण मानना अपने को सशरण करना है।

卐 ॐ 卐

४–२४६, जहाँ तक शरण का प्रश्न है तेरे क्षमादि परिणामों को छोड़ कर अन्य कुछ भी जगत में शरण नहीं।

卐 ॐ 卐

५–२५७, आत्मन्! तुझ पर तू ही कृपा कर सकता अतः अपनी ही दृष्टि में भला बनने का प्रयत्न करके अपने में प्रसाद पा।

卐 ॐ 卐

६–२५८, अन्य आत्मा तुझ पर कुछ भी कृपा नहीं कर

सकते क्योंकि प्रत्येक आत्मा अपना ही अकेला कर्ता भोक्ता है और यही व्यवस्था तेरी है अतः दूसरों की दृष्टि में भले बनने के लिये दूसरों को प्रसन्न करने की चेष्टा मत करो।

卐 ॐ 卐

७—२६८. रे मनोहर! दुःख से मुक्त होने के लिये तेरा ही भेद विज्ञान बल तुझे शरण होगा अन्य नहीं।

卐 ॐ 卐

८—२७४. सम्यक्त्व परिणमन रूप निज पुत्र को पैदा करो ऐसे पुत्र के बिना तेरी निर्वाणगति न होगी, यही "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" का अर्थ समझो।

卐 ॐ 卐

९—५३२. हे शुद्धस्वभाव! प्रसन्न होहु, प्रगट होहु, मुझ अनाथ का अन्यत्र कहीं शरण नहीं है, तेरे सिवाय सब ही भाव सब ही पदार्थ सब ही लोग सब ही व्यवहार केवल धोखा है अथवा अब अपने पर दया कर, बहुत हँसी करली, अब रहने दे।

卐 ॐ 卐

१०—६१९. बाह्य में यदि शरण हैं तो पञ्च परमेष्ठी हैं सो भी उनका स्मरण शरण है और स्वयं में यदि शरण है

तो ममता राग द्वेष से रहित आन्तरिक उपयोग शरण है अतः इन आभ्यन्तर, बाह्य शरण के अतिरिक्त किसी भी आत्मा में शरणपने की आशा मत करो।

卐 ॐ 卐

११–६८७. इस आत्मा को यदि शरण है तो खुद की निर्मलता ही शरण है।

卐 ॐ 卐

१२–६८८. व्यवहार में शरण है तो पञ्चपरमेष्ठी (सशरीर परमात्मा, अशरीर परमात्मा, साधुसंघपति, उपाध्याय, साधु) हैं, अरे !! वहां भी परमेष्ठी (उत्कृष्ट पद में स्थित) का ध्यान रूप खुद का परिणाम शरण है, यह परिणाम भी निर्मलता का कुछ भी विकास हुए विना नहीं होता, इसलिये यह निःसंदेह सिद्ध हुआ कि इस आत्मा को यदि कोई शरण है तो यह अद्वैत ब्रह्म (आत्मा) ही शरण है।

卐 ॐ 卐

१३–११६. जहाँ दर्शन ज्ञान चारित्र तप आदि के आचरणों का शरण दर्शनाचारादि से परे शुद्धदर्शनादि स्वभावमय आत्मतत्त्व की प्राप्ति के लिये लिया जाता वहाँ (उस ज्ञानी के उपयोग में) अन्य द्रव्य में शरणबुद्धि कैसे हो

सकती है ?

卐 ॐ 卐

१४-७१३. यह कभी मत सोचो—"मुझे कोई विपदा ही नहीं आ सकती सब मेरे अनुकूल हैं", जब पाप का उदय आता है तब सब प्रतिकूल हो जाते हैं, दुःख के अनुरूप संयोग वियोग हो जाता है, इस कारण दुःख न चाहने वालों को दुःख के मूल पापों की निवृत्ति का सहारा लेना चाहिये अन्य सहारा सब व्यर्थ है।

卐 ॐ 卐

जयप्रकाश रस्तोगी के प्रबंध से विजय प्रिंटिंग प्रेस, मेरठ में मुद्रित।